प्रेरणा-प्रवाह

•

विनोबा

•

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ,
राजघाट, वाराणसी
संस्करण दूसरा
प्रतियाँ ३,००० अप्रैल, १९६३
कुल प्रतियाँ ६,०००
मुद्रक शिवनारायण उपाध्याय,
नया संसार प्रेस, भदैनी, वाराणसी
मूल्य १ २५ नये पैसे

Title PRERANA PRAVAH
Author Vinoba
Publisher Secretary
A B Sarva Seva Sangh
Rajghat Varanasi
Edition Second
Copies 3 000 April 63
Total Copies 6 000
Printer S N Upadhyaya
Naya Sansar Press
Bhadaini Varanasi
Price Re 1 25n P

प्रकाशकीय

मन्दसौर की चातुर्मास्य पूर्ण करने के बाद, पदयात्रा में लौटने पर पूज्य विनोबाजी का प्यार इन्दौर नगर पर रहा। राजा अहिल्याबाई व इन्दौर ने उन्हें बहुत मात्रा बाँधा। यह देश का मध्यवर्ती केन्द्र तो है ही, व मातृ-शक्ति व आकर्षण की भी बहुत सम्भावना दिखाई दी। अतः २४ जुलाई १९६० को बाबा ने अपने बन्धावरण में इन्दौर नगर में प्रवेश किया और पहली बार आठ सप्ताह तक अर्थात् पूरे दो महीने तक तथा बाद में सितम्बर के अन्त में कुछ दिनों तक बाबा प्रमुख बाजी ने इन्दौर को सर्वोदय-नगर बनाने की दिशा में विविध कार्यकर्ताओं द्वारा सतत आरम्भ का सम्पन्न कार्य किया। यहाँ पाक्षर-आन्दोलन का शुभारम्भ हुआ। 'विश्व-नीड़' आश्रम, की स्थापना हुई। सफाई-आन्दोलन के सन्दर्भ में शुचिता से आत्म इन्दौर का मान बढ़ाया। कस्तूरबाग्राम की बहनों के साथ मातृ-शक्ति व विश्व-प्रेम का भावना भाषा में प्रस्तुत किया। इतना अधिक समय बाबा ने अपनी सम्पूर्ण यात्रा में किसी और नगर का नहीं दिया और यह सद्भाग्य इन्दौर का ही रहा। अपने समय में यह सचमुच इन्द्रपुरी ही रहा है। सर्वोदय-नगर बनकर ही उसका यह नाम सार्थक होगा।

इन्दौर-निवास-काल के प्रवचनों में से 'शुचिता से आत्मदर्शन' नामक अभियान और कस्तूरबाग्राम की बहनों के बीच दिये गये प्रवचनों का संकलन कस्तूरबाग्राम से 'स्त्री-शक्ति' का सामिन्य नाम से प्रकाशित हो चुका है। यह संकलन 'प्रेरणा-प्रवाह' नाम से प्रकाशित हो रहा है। इसमें ऐतिहासिक, सम-सामयिक चर्चा, प्रश्नोत्तर-चर्चा व स्मरण के साथ कार्यकर्ताओं के साथ किये गये तात्विक और आध्यात्मिक प्रवचन हैं। इनसे खास इन्दौर के प्रवचनों की कमी समाप्त होती है। इस पुस्तक का संकलन सम्पादन बहन कुसुम देशपांडे ने किया है।

पुस्तक बहुत विलम्ब से प्रकाशित हो रही है, जिसके लिए पाठक क्षमा करेंगे।

अनुक्रम

१

अहिंसामूलक करुणा

अन्य प्राणी और अहिंसा का विचार

अहिंसा शब्द का उच्चारण बहुत पुराने जमाने से होता रहा है। प्राय मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों को यह विचार सूझता हो ऐसा दीखता नहीं है। मुमकिन है सूझता भी हो लेकिन मनुष्य पहचान नहीं सकता। पर हमें जितना दीखता है उतना ही सामने हम डालते हैं। मांसाहारी प्राणी मांसाहार करते हैं और शाकाहारी प्राणी शाकाहार। मालूम नहीं गाय को क्या सूझता है कि वनस्पति खानी चाहिए, वहां खाना उचित है और मांसजन्य वस्तु का आहार उसके लिए उचित नहीं है। इस प्रकार का उचित और अनुचित का विचार कभी उसे छूता होगा या नहीं मालूम नहीं लेकिन छूता हुआ दीखता नहीं है। ऐसा दीखता है कि उसकी देह प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि वह वनस्पति ही ग्रहण करती है और प्राणिजन्य वस्तु पसन्द नहीं करती।

हिरन और 'घी' की रोटी

हमारे आश्रम में एक हिरन था। जब-जब खाने की घण्टी बजती थी तब उसे हम खिलाते थे। घण्टी सुनकर वह आता भी था। उसे भान हो गया था कि घण्टी बजने पर खाने के लिए जाना चाहिए। एक रोटी हम उसे खिलाते थे। एक दिन जिस आटे की रोटी बनी थी उस आटे में घी डाला गया था। हमेशा वैसी रोटी नहीं बनती थी। उस दिन रोटी जब उसके सामने रखी तो सूंघ लिया खाया नहीं। हमेशा की तरह बिना घी की रोटी बनाकर खिलानी पड़ी। मतलब यह कि वह शाकाहार में हमसे आगे बढ़ा हुआ था। हम लोग तो प्राणिजन्य

वस्तु भी चला लेते है लेकिन वह उसे पसन्द नहीं करता था। उसी गंध का प्राप्त उसे ज्यादा होती तो वह क्या करता मालूम नहीं।

बैल पर अलसी का प्रयोग

वर्धा के बाजार में सागर का एक बैल हमने खरीदा। उसे हम अलसी की खली खिलाते थे। वहाँ तो वह अलसी की खली नहीं खाता था। उसकी आदत मूंगफली की खली खाने की थी। उसे अलसी की बू आती थी। हमने उसकी नाक में अलसी के तेल में भिगोए हुए कपास के दो टुकड़े रख दिये। इन टुकड़ों को वह नाक से बाहर भी नहीं निकाल सकता था। दो-चार दिन में उसकी आदत बन गयी, तो अलसी की खली खाना उसने शुरू कर दिया। उसी तरह घी की आदत जिव्हा में लगा दें तो मांस खाना छूट सकता था। यह एक मूक जानवर है, नादान है, उसे इस प्रकार की ट्रेनिंग दी जा सकती है।

हिरन आदत से शाकाहारी

उस हिरन ने घास की रोटी नहीं खायी, इसलिए वह ठेठ मांसाहारी साबित हुआ। लेकिन by choice नहीं। आदत की इसलिए बन गया। मांसाहारी प्राणी घास नहीं खाते। शास्त्रकार कहते हैं कि उनकी आँतें घास के लायक नहीं है। लेकिन वे प्राणी यह सोचते हैं कि नहीं, मालूम नहीं।

अहिंसा का व्यापक अर्थ

लेकिन मनुष्य अति प्राचीन काल से अहिंसा का विचार करता आया है। अहिंसा क्या है यह जब कभी सोचा जाता है तब मेरी श्रद्धा उसके व्यापक अर्थ में है। गीता में कहा है 'न हन्ति, न हन्यते'—आत्मा न मारता है न मरता है। 'न घातयति'—न मरवाता है। यह आत्मा का स्वभाव है। वह सहज है। वह कर्ममुक्त है, कोई क्रिया नहीं करता लेकिन मारने की क्रिया हो ही नहीं सकती। जहाँ दूसरी भी सारी क्रिया नहीं होती वहाँ मारने की भी नहीं होती। मारता नहीं, मरता नहीं

ऐसी धारणा है और यही अहिंसा है। फिर इसका सामाजिक विचार बना तब हमने उसका एक विधि-निषेधयुक्त शास्त्र बनाया। लेकिन हमारा मूल विचार यही है कि आत्मा के साथ अहिंसा जुड़ा है इसलिए हम जितने आत्म-स्वभाव के नजदीक जायेंगे उतना अन्तस्तुष्टि और शान्ति मिलेगा और जितने आत्म-स्वभाव से दूर जायेंगे, उतना शान्ति नहीं मिलेगा।

करुणा परायण पुरुष भी हिंसा पसन्द करते हैं

इस तरह अहिंसा का मूल विचार और सूक्ष्म विचार ऐसे दो विभाग जीवन में बन गये और आज तक मनुष्य मानता आया है कि अहिंसा अच्छी है उसका मानस अच्छा है लेकिन मनुष्य के रक्षण के लिए—डिफेन्स के लिए—यानी जब हमला होता है तब हिंसा की जा सकती है और वह हिंसा अहिंसा में गिनी जा सकती है इस प्रकार मनुष्य का विचार चलता ही रहा। यह देखा जाता है कि बहुत करुणा-परायण पुरुष भी हिंसा को पसन्द करते हैं यह समझकर कि इससे मदद मिलेगी। कम्युनिस्टों ने हिंसा का साथ लिया गरीबों के हित में। उसके मूल में करुणा है। समाज-शास्त्रकारों ने अपराधियों को तरह-तरह का दण्ड देना मान्य किया। उसके मूल में भी करुणा है। परशुराम ने धनुष उठाया ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय का काम किया—उसमें भी करुणा है। इसलिए हमने परमेश्वर से सिर्फ करुणा नहीं माँगा है। सत्य प्रेम और करुणा माँगी है। जो दोष करुणा में आ सकता है वह प्रेम में भी आ सकता है। इन दोनों को निर्दोष बनाने के लिए सत्य की आवश्यकता है। इसलिए सत्य प्रेम और करुणा मिलकर एक पूर्ण विचार बनता है।

अहिंसा के विचार में विज्ञान की मदद

समाज में जितना भी शासन चलता हो, चाहे वह सरकार के जरिये हो या अन्य किसीके जरिये—उसमें एक दबाव का अंश ही मान्य किया जाता है वह भी करुणा की प्रेरणा से ही। अभी तक मनुष्य के सामने

यह विचार साफ नहीं हो रहा है कि अहिंसा के हित में क्या क्या किया जा सकता है और क्या-क्या नहीं। अब सान्स का युग आ रहा है। वह शस्त्रों की भयानकता निःशस्त्र पर सोचने में मदद दे रहा है और सोचने के लिए लाजिमी कर रहा है।

एटम बम के खिलाफ बोलनेवाले अहिंसक हैं?

आज कई दयालु लोग भी हिंसा के खिलाफ नहीं हैं। वे एटम बम के खिलाफ हैं, लेकिन फाँसी के खिलाफ नहीं है। कन्वेन्शनल वेपन्स, जिनका मामूली शस्त्र कह सकते हैं उनका उपयोग हो, ऐसा वे चाहते हैं। इसलिए एटम बम का उपयोग बन्द हो, ऐसा चाहनेवाले सीमित हिंसा चले, यह चाहते हैं। वह इसलिए कि दण्ड चल सके। उन बड़े शस्त्रों ने ही इन छोटे शस्त्रों की इज्जत कम की है, इसलिए वे चाहते हैं कि बड़े शस्त्र न चलें ताकि छोटे शस्त्र चलें और दण्ड-शक्ति का दबदबा बने रहे और हम चलायें। आज दुनियाभर के सारे राज्य दण्ड-शक्ति पर खड़े हैं। अगर आणविक शस्त्र चलेंगे, तो उस हालत में इन छोटे शस्त्रों की कुछ चलेगी नहीं और वह दण्ड-शक्ति खतम होगी, इसलिए वे घबड़ा गये हैं कि दण्ड कैसे चलेगा? जो अत्यन्त तीव्रता से आणविक वेपन्स के खिलाफ बोलते हैं वे अनन्य रूप अहिंसा में सोचते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता, बल्कि दण्ड जारी रहे इसलिए वे वैसा सोचते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर को मिथ्या बोलने की प्रेरणा दो बार हुई, वह करुणामूलक ही थी। बहुत करुणावान् लोग मानते हैं कि सन्तति नियमन होना चाहिए। एक करुणा सन्तति नियमन करने के लिए कहती है और दूसरी करुणा दुनिया का दर्द देख कर ... कहती है। एक करुणा वह है, जो मजदूर यूनियन बनाती है और एक करुणा वह है जो वासना के क्षय के बिना अहिंसा नहीं चलेगी यह कहती है।

गौतम बुद्ध की महान खोज

वासना के क्षय के बिना अहिंसा नहीं चलेगी यह करुणा गौतम बुद्ध

को सूझी। यह करुणा उसे नहीं सूझती कि वह समृद्ध दुनिया बनाने में लगा रहता और कानून बनाकर प्रचार-कार्य में लगता। लेकिन यह सत्य को आज में पढ़ा और करुणा का स्थान कहाँ से चलता है, यह पहचानने के लिए खोज की। खोज यह थी कि मनुष्य को वासना-क्षय करना चाहिए। हम गाय के प्रति करुणा दिखाते हैं और चाहते हैं कि गाय बचे। लेकिन वासना बढ़ेगी तो गाय खत्म होगी। आज गाय है, लेकिन कल हम अपनी सन्तान बढ़ाते चले जायेंगे तो मनुष्य गाय और बैल को अपना हराम दुश्मन मानेगा और उनको खत्म करने की तजवीज तरकीब अवश्य ढूँढ़ेगा। इसलिए बुद्धमूल करुणा वासना-क्षय में से आती है। करुणा का विचार पुराना है। वासना-क्षय का विचार भी पुराना है। मुक्ति की खोज में वासना-क्षय का जो विचार आता है वह भी पुराना है। करुणा के बिना समाज सुखी नहीं हो सकता, यह खोज भी पुरानी है। करुणा के लिए वासना-क्षय तक पहुँचना है। यह खोज जहाँ तक हम जानते हैं, गौतम बुद्ध की है और उसके बाद बहुत लोगों ने लाभ उठाया है।

व्यक्तिगत और सामाजिक क्षेत्र में करुणा

बहुत लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान गिरा और प्रतिकार नहीं कर सका, इसका कारण है बुद्ध की परम्परा जिसने हिन्दुस्तान को और दुर्बल बनाया। लोग समझते हैं कि कुछ लोग वासना-क्षय करेंगे तो कुछ लोगों का मन्द ही होती है। अतः लोगों ने सन्तों के उन विचारों का विरोध नहीं किया। लेकिन जहाँ आज हम करुणा के लिए सामाजिक क्षेत्र में वासना-क्षय लाते हैं तो समाज उसे पसन्द नहीं करता। एक आत्मा त्याग करे, तो समाज उसे पसन्द करता है। लेकिन वह आत्मा अपने समाज को दूसरे समाज के लिए त्याग करने के लिए सिखाये तो समाज उसे पसन्द नहीं करेगा। त्यागी और वैरागी मनुष्य अच्छा है लेकिन वह त्याग और वैराग्य सारे समाज को सिखाना और त्याग कराना समाज को पसन्द नहीं है। एक समाज को दूसरे समाज के लिए त्याग करना

चाहिए, यह समझाने के लिए वह कहे कि हिन्दुस्तान को पाकिस्तान का मन्त्र करना चाहिए या पाकिस्तान का हिन्दुस्तान के लिए प्रेम व त्याग करना चाहिए, तो समाज उसके खिलाफ खड़ा होगा और कहेगा कि यह मनुष्य समाज-द्रोही है या नहीं है। सारांश, इस प्रकार का व्यापक वासना-क्षय और करुणा के लिए नहीं है। करुणा तो सबको पसन्द है वासना-क्षय भी पसन्द है लेकिन जहाँ आपने वासना-क्षय का सम्बन्ध समाज में जाना, वहीं वासना-क्षय के खिलाफ समाज उठेगा। आप इसको सामाजिक तत्त्व बनाते हैं तो समाज पसन्द नहीं करेगा। यह जो विचारधारा है, वह सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया में चलती है। ईसामसीह के खिलाफ लोग उठे। कम्युनिस्ट भी बोलते हैं कि आपने वासना-क्षय और करुणा से जो किया, यह हम लोगों के लिए सोचने की बात है।

शाखाग्राही और मूलग्राही करुणा

हम करुणा चाहते हैं लेकिन किस तरह की? हम मल-मूत्र-सफाई के लिए जाते हैं बीमारों की सेवा करते हैं—उसमें करुणा होती है। अनेक आपत्तियों में गृहस्थाश्रमी फँसे हैं और सन्तान बढ़ी है, उस हालत में मन्द करने की इच्छा होती है। यह भी करुणा है। क्या यह करुणा उन गृहस्थों को समझायेगी कि तुम नाहक आग में पड़े हो, इसलिए भोग-मुक्त हो जाओ? वे आग में पड़े हैं तो यह करुणा उनको मन्द करती है। इसलिए वह शाखाग्राही करुणा है, मूलग्राही नहीं।

इन्द्रिय मुक्ति के लिए वासना क्षय आवश्यक

तुकाराम ने मानसिक विकास के क्रम में आखिरी मौके पर कहा है "काम नाहीं, काम नाहीं जाला पारी रिकामा।" इसके दो अर्थ होते हैं काम नहीं है क्योंकि कामना नहीं है। "नसल्या छंदे नसल्या छंदे जग विनाकारण विह्वलसे"। दुनिया दुःख कर रही है, नाच रही है बिना मतलब लेकिन दुनिया को उस वेदना मार्ग में आनन्द आता है। इसलिए उसका

देखना मैं छुड़ाने का प्रयत्न मैं नहीं करूंगा। 'एकाएकी सुख लोकों निराला।' इसलिए तुकाराम कहता है कि वह लोगों से अलिप्त हो गया है। वह जानता है कि उन लोगों को दुःख से अलग करें, तो अच्छा नहीं लगेगा। उनको उसीमें अच्छा लगता है इसलिए विनोद में दुनिया चिल्लाती है। यह बड़ा कठोर वाक्य मालूम होता है लेकिन उसमें मूल करुणा का है। तुम वासना अगर रखो तो दुःख पाते रहो। तुम्हें दुःख मिलता रहेगा। यह सिलसिला काटनी है तो जड़ काटनी होगी। इसलिए वासना-क्षय की ओर जाना ही होगा। वासना-क्षय की तरफ जाना है और कम-ब-कम जायेंगे तो किस तरह वासना क्षय होगा? गौतम बुद्ध ने इसीलिए कहा है कि वासना और तृष्णा सारे दुःखों का मूल है उसे काटना ही होगा। तो क्या जिजीविषा काटने की है? वासना-क्षय के लिए क्या यह भी करना है? यह तो आखिरी कदम है। जब तक हम यह समझेंगे कि हरएक को जिजीविषा है तब तक हम दूसरे प्राणी की हिंसा नहीं करेंगे। जैसी हमें जिजीविषा है, वैसे दूसरों को भी है। मुझे भूख है वैसे दूसरे को भी है। इस तरह आत्मौपम्य दृष्टि से देखेंगे, तो उनकी भी जीने की इच्छा है और वासनाएँ भी हैं। आरम्भ में छूटेगा नहीं, तो आरम्भ कहाँ से करना होगा?

कुवासनाएँ छोड़नी हैं

जिस वासना के कारण स्पष्ट ही शरीर की, इन्द्रियों की, समाज की हानि होती है उसे काटना होगा। शराब से शरीर, मन खराब होता है—यह साफ बात है लेकिन यह साफ नहीं हुआ तब तक तो सब करता गया। दूसरी वासना है पर-स्त्री के साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। यानी पहले कु-वासना पर प्रहार करना होगा। वासना में कुछ कु-वासना है और कुछ सद्-वासना—यह समझकर जो साफ कु-वासनाएँ हैं उन्हें छोड़ना ही होगा। सद्-वासनाएँ रहेंगी। उनमें क्रम बिठाना होगा।

वासना-क्रम बिठाना है

जिस वासना के लिए सबके मन में चाह है लेकिन जिसकी पूर्ति

के साधन कम हैं यह कामना चाहे सद्वासना ही हो किसी कम कर सकें, करें। यह दूसरी कसौटी होगी। सद्वासना में भी जिनका सहारा उपयोग नहीं मिलता है उन्हें छोड़ना पड़ता है। शास्त्रकारों ने कहा है—ॐ और राम का जो नाम चली उसमें—जब ॐ जानना है तब ॐकार के लिए सुशिक्षित होना होगा। उच्चारण करके जानना पड़ता है। लेकिन राम-नाम अगर लेना है तो बिना चाहे भी कोई परहेज नहीं। शास्त्रकार कहते हैं कि स्त्रियों, शूद्रों में आरम्भ में लगन रहती है उस हकदारता की अवस्था में ॐकार का मन्त्र न। राम जपना, लेकिन राम-नाम जप सकता है। राम-नाम एक ऐसा मन्त्र मान लिया जिसे सारा पुण्यवान शुचि-अशुचि सब कोई जप सकता है। इसलिए हम ॐकार की कामना भी नहीं करेंगे राम मन्त्र ही जानेंगे। सार यह कि सद्वासना सबके लिए न हो तो उसका त्याग करना चाहिए छोड़ना चाहिए। दुर्वासना छोड़नी चाहिए। जो सद्वासना जो सबको उपलब्ध न हो उसका उतना साधन रहा है छोड़ना चाहिए। कम-से-कम उसका साधन सबके हाथ में आने तक छोड़ना चाहिए। जो सबको सद्वासना उपलब्ध है पूर्ति का साधन है—जैसे खाने के लिए मिठाई सबको उपलब्ध [redacted] तो बहुत खाते हैं। लेकिन संयम का ध्यान आयगा। चाहे सबके लिए उपलब्ध हो फिर भी शरीर और मन पर जड़ता न आये कि कोई काम हो न कर सके ऐसी अवस्था न हो। इसलिए उसका अधिक मात्रा में सेवन न हो। यहाँ मात्रा का सवाल आया। जिन सद्वासनाओं की पूर्ति का साधन सर्वत्र है, उनका भी मात्रा में लेना चाहिए। क्योंकि बुद्धि पर शरीर पर बुरा असर न हो। जहाँ मात्रा तक यह विचार पहुँचता है और सद्भाव पर भी पाबन्दी आती है वर्ग और विचार भी सामने आता है।

सद्वासनाओं का त्याग

फलाहार हो तो सर्वोत्तम। मिठाई राजस आहार है। लेकिन फलाहार की इच्छा हो और भूख लगे, और भूख सहन नहीं होती, इसलिए

खाना हो पड़े, यह लाचारी की अवस्था भी नहीं आनी चाहिए। समय पर खायें लेकिन क्षुधा की पीड़ा सहन नहीं कर सकते ऐसी हालत न आय। ऐसी हालत में अपने पर ही हमारी सत्ता नहीं रहती। जिन वासनाओं से मनुष्य आजादी मत्त और काबू खाता है उन वासनाओं को भी काबू में रखने की कोशिश होनी चाहिए। इसलिए फलाहार को छोड़कर निराहार का विचार आया।

सारांश वासनाओं के निराकरण का क्रम यह होगा

१ कुवासना का त्याग

२ सद्वासना भी सबको उपलब्ध न हो तो उसका त्याग

३ सद्वासना हो लेकिन उसके भोग में मात्रा और

४ व्याकुलता को काबू में रखने के लिए सद्वासना का त्याग।

इन्दौर —पंजाब कार्यकर्ता शिविर में

९.८.६०

२

जीवन का समीकरण = त्याग + भोग

भारतमाता ने पारतन्त्र्य में भी प्रतिभा प्रकट की

सब जानते हैं कि लोकमान्य तिलक अपने जमाने में अद्वितीय थे। भारत पर परमेश्वर की बहुत कृपा रही कि उस जमाने में अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय पुरुष हुए। यह भारत की बहुत बड़ी विशेषता रही। रामकृष्ण समन्वय में अद्वितीय थे। महात्मा गांधी अनासक्त कर्मयोग में अद्वितीय रहे। श्री अरविन्द योग के क्षेत्र में अद्वितीय थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का काव्य प्रतिभा में अद्वितीय स्थान है। इस प्रकार अद्वितीयों का समूह हिन्दुस्तान में तब हुआ, जब कि हिन्दुस्तान अंग्रेजों की गिरफ्त में था। लोकमान्य की गणना ऐसे अद्वितीयों में है। यह नजारा यह दृश्य अक्सर कम देखने को मिलता है कि सब अद्वितीय एक जमाने में पैदा हो जायें। अर्थात् भारतमाता ने पारतन्त्र्य में भी प्रतिभा प्रकट की।

नेता आत्म-संशोधन में लग गये, दबे नहीं

दूसरे देशों का इतिहास बताता है कि देश की गुलामी में या तो लोगों ने बगावतें कीं या लोग दब गये। लेकिन हिन्दुस्तान के इतिहास में दूसरा ही दृश्य देखने को मिलता है। अंग्रेजों के राज्य की स्थापना के बाद पहले छुटपुट बगावतें लोगों ने कीं, लेकिन ज्यादा नहीं। लोगों ने न बगावतें कीं, न देश ने दब जाना पसन्द किया। बल्कि नेता आत्म-संशोधन में लग गये। चिन्तन करनेवाले नेता आत्म-संशोधन में लग गये कि इतने दूर से लोग आये और हम पर हुकूमत कायम की, तो हमारे समाज-शरीर में और हम लोगों के मानस में कुछ दोष होने चाहिए और उन दोषों का निरसन करने पर भारत को अपनी प्रतिभा प्रकट करने का

सहज ही मौका मिलेगा। अतः यहाँ के नेताओं की सूक्ष्म दृष्टि देश की प्रकृति के दोषों का संशोधन और निवारण होना चाहिए और उसमें पश्चिम की संस्कृति का थोड़ा लाभ लेना चाहिए।

समाज-सुधार और संशोधन

इसलिए समाज-सुधार, धर्म-सुधार, उपासना-सुधार, तत्त्वज्ञान-सुधार हुआ। उसके लिए ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, साधना-समाज, थियोसॉफिकल समाज—ऐसे तरह-तरह के अनेक समाज स्थापित हुए। उन्होंने समाज-सुधार की बात की और संशोधन किया।

भारत का अद्वितीय इतिहास

रामकृष्ण परमहंस ने सब साधनाओं के अनुभव से समन्वय अनुभव किया। इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, हिन्दू, वैष्णव, भक्ति-मार्ग ऐसी विविध साधना करके एकानुभूति प्राप्त की। इस प्रकार के समाज-संशोधन और समाज-सुधार का कार्य पारतन्त्र्य के बाद लोगों को सूझे। यह सिलसिला जहाँ तक इतिहास का मुझे ज्ञान है, भारत के इतिहास में ही हुआ है। उसके बाद स्वराज्य की भावना पैदा हुई। स्वराज्य के लिए आन्दोलन हुआ, स्वराज्य की योजना हुई और स्वराज्य प्राप्त हुआ।

महात्मा गांधी : संस्कृति की फलश्रुति

अब सर्वोदय का विचार निकला है। ये सारी बातें एक के बाद एक हो गयीं। लेकिन मूल में आत्म-संशोधन की प्रवृत्ति ही थी। परतन्त्रता के बाद यह हुआ। इससे प्रकट है कि इस देश के शरीर की प्रकृति में चेतना सतत जगी है। हजारों वर्षों के चिन्तन के परिणामस्वरूप यह हुआ है। उसका दर्शन इसमें मिलता है। इसने मेरा चित्त बहुत खींचा है और कई बार मैंने उसका जिक्र भी किया है कि पारतन्त्र्य के बावजूद यहाँ के लोग-नेता आत्म-संशोधन के काम में लगे रहे। उसीके परिणामस्वरूप ही स्वराज्य प्राप्ति का साधन सूझा, वह अहिंसा था। पहले वह साधन आजमाया नहीं गया था। पर वह साधन भी भारतीय संस्कृति [illegible]।

महात्मा गांधी यदि न भी होते तो यह चीज न बनती ऐसी बात नहीं। वे न होते तो यहाँ की सभ्यता दूसरे को जगाती। यह यहाँ की संस्कृति की फलश्रुति है जो महात्मा गांधी के रूप में प्रकट हुई।

राजनीति आपद्धर्म

भारत के अर्वाचीन इतिहास में ऐसा दृश्य देखने को मिलता है कि यहाँ दोषों का संशोधन हुआ और जीवन के विविध क्षेत्रों में अनेक महनीय पुरुष पैदा हुए। उन्हीं में लोकमान्य हैं। उन्होंने सिखाया कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध हक है और वह हम हासिल करके रहेंगे। उस समय लोकमान्य से पूछा गया था कि स्वराज्य के बाद आप कौनसा पोर्टफोलियो लेंगे? तो उन्होंने कहा था कि राजनीति में मैं लाइलाज से हूँ। धर्म रुक रहा है, देश का विकास रुक गया है इसलिए लाचारी से मैं राजनीति में हूँ। राजनीति मेरा काम नहीं है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद तो मैं वेदों का संशोधन करूँगा या गणित विद्या का संशोधन करूँगा। यह तो मैंने आपद् धर्म के तौर पर कबूल किया है।

नोआखाली की यात्रा क्यों?

अभी तक हम इतना ही समझे हैं कि राजनीति में ताकत है। लेकिन अब यह समझने के दिन आये हैं कि राजनीति में दल जमाने में ही ताकत भी आज नहीं है। स्वराज्य प्राप्ति के पहले जो लोग राजनीति में थे वे लोग लोगों के उत्थान के लिए राजनीति का अत्यन्त जरूरी होता है इसलिए थे। वह राजनीति नहीं है। वह तो लोकनीति होती है, चाहे उसका स्वरूप राजनीति जैसा दीखता हो। इसलिए स्वराज्य के आखिरी आन्दोलन में अनेक धार्मिक पुरुषों ने सहयोग दिया और अपना काम छोड़कर इसमें आये। वह लोकनीति थी। अगर वह राजनीति होती, तो स्वराज्य के बाद महात्मा गांधी नोआखाली में न दीखते। जैसे बैरिस्टर जिन्ना ने अपने अधिकार हाथ में लिये थे और पाकिस्तान की बागडोर सँभाली या मार्गदर्शन का जिम्मा उठाया था वैसा महात्मा गांधी भी

कर सकते थे। लेकिन वे जानते थे कि स्वराज्य के बाद हमें राजनीति करनी है और लोकनीति के तौर पर स्वराज्य के बाद कांग्रेस को लोकसेवक-संघ बनने की हिदायत उन्होंने दी। मृत्यु से अंतिम दिन उन्होंने यह हिदायत दी। क्योंकि कांग्रेस के नाम को वे और उज्ज्वल रूप देना चाहते थे और उसे उज्ज्वल करना चाहते थे।

जहाँ त्याग, वहाँ बल

बात ऐसी है कि जिस क्षेत्र में त्याग करना पड़ता हो, है त्याग के बिना जो क्षेत्र सफल नहीं होता, उसमें ताकत होती है। अंग्रेजों के जमाने में स्वराज्य के पहले कांग्रेस का मेम्बर बनना याने अंग्रेजों के खिलाफ काम जाहिर करना था। खादी का टोपी पहनना उनका गुस्सा मोल लेना था। एक जंग में सैनिक बनना था। उस जमाने में उसमें बहुत तकलीफ उठानी पड़ती थी। आज कांग्रेस का मेम्बर बनना याने कुछ पाने का काम होगा, खोने का नहीं। मतलब यह कि राजनीति में तब ताकत थी। उस जमाने में राजनीति में जाना याने जेल जाना, मार खाना, कोड़े खाना, फाँसी पर चढ़ना—यह सारा राजनीतिक क्षेत्र में होता था। वह ताकत आज कम लगती है। आज राजनीति में त्याग नहीं है। तो आज शक्ति कहाँ है? समाज-क्षेत्र में है। धार्मिक क्षेत्र में है। उसमें हम काम करते हैं तो त्याग करना पड़ता है। 'यत्र त्याग तत्र बल'—जहाँ त्याग है वहाँ बल है।

सत्ता में कमलपत्रवत् रहें

मैं मानता हूँ कि आज राजनीति में त्याग का मौका नहीं है तो भी त्याग कर सकते हैं। जैसे, जनक महाराज ने त्याग किया था। मैं चाहता हूँ कि जिनके हाथ में सत्ता है वे जनक महाराज का या भरत का आदर्श अपने सामने रखें। ये दो बड़े पुरुष यहाँ हो गये। ऐसा हो सकता है। लेकिन आज राजनीति में स्वाभाविक त्याग का क्षेत्र है ऐसा नहीं कह सकते। त्याग कोई करेगा और बावजूद सत्ता के वह त्याग

करेगा, तो वह त्याग परम उत्तम होगा। लेकिन वह स्वाभाविक, नैसर्गिक प्राकृतिक त्याग का क्षेत्र नया है। वह आग का क्षेत्र है। इसलिए आज समाज-सेवा में उत्तम त्याग है। नीति समाज-सेवा के क्षेत्र में है। आज तरह-तरह की सेवा की जरूरत है। नीति का अनुसंधान त्याग में है, वह योजना अच्छी है।

नबबाबू के त्याग की अत्यन्त उपेक्षा

मैं आपको मिसाल देता हूँ। नबबाबू उड़ीसा के मुख्य मन्त्री थे। वे भूदान में आना चाहते थे। उन्होंने त्याग-पत्र देने की सोचा भी था। उनसे मेरी मुलाकात कई बार होती थी लेकिन एक भी मुलाकात में मैंने उनको यह नहीं समझाया कि इस पद का आप त्याग दीजिये। मैं यह नहीं मानता कि इस तरह की सलाह किसीको दी जाय। वे अपने विचार कांग्रेस के सामने रखते थे। आखिर ऊपरवालों ने देखा कि उनके मन में लगन है, तो उन्होंने छोड़ दिया। उनके त्याग की प्रशंसा करनेवाला कोई आर्टिकल आपने पढ़ा? किसीको लिखने की प्रेरणा नहीं हुई। मैंने उनकी प्रशंसा नहीं की, क्योंकि उनकी प्रशंसा करना अपनी प्रशंसा करने जैसा होगा। लेकिन आखिर मैंने देखा कि उनके त्याग की अत्यन्त उपेक्षा हो रही है। तब मैं तमिलनाड में घूमता था। वहाँ माणिक्यवाचकर एक महान् तत्त्वज्ञानी वजीर की कोटि के हो गये। उन्होंने उस जमाने में प्रधानमन्त्रीपद का त्याग किया और बहुत बड़े भक्त बन गये। उनके भजन हर बालक के कंठ पर हैं। उनके गाँव हम गये थे। उस दिन माणिक्य वाचकर की अद्वितीय मिसाल देकर मैंने नबबाबू का नाम रखा। मैंने लोगों से कहा कि अगर राज्यसत्ता के जरिये क्रान्ति हो सकती थी, तो माणिक्यवाचकर ने वह क्यों छोड़ी? राज्यसत्ता से क्रान्ति होती तो गौतम बुद्ध सत्ता का त्याग क्यों करता? ऐसी मिसालें प्राचीन काल में हुईं और अर्वाचीन काल में भी ऐसी मिसाल हो रही है। इस तरह मैंने नबबाबू की मिसाल देकर उनकी प्रशंसा की। त्याग की कितनी उपेक्षा अपने देश में आज है।

त्याग की उपेक्षा की दूसरी मिसाल

इसकी और एक मिसाल है। अभी आपने सुना होगा कि राजेन्द्रबाबू ने अपना वेतन कम किया। और अब वे कोई ढाई हजार रुपये ले रहे हैं। गांधीजी ने जाहिर किया था कि पांच सौ रुपया लेना चाहिए। उस जमाने के पांच सौ रुपये की कीमत आज के दस हजार रुपया से बहुत ज्यादा है। लेकिन कितने अखबारों ने इस पर लेख लिखा ? मैं घूमता रहता हूँ इसलिए सब अखबार तो मेरे पास आ नहीं सकते हैं। लेकिन जहां तक मेरा खयाल है किसीने नहीं लिखा। और आजकल अखबार में आता क्या है ? कोई मिनिस्टर दान की फैक्टरी खोलने जाता है और भाषण देता है। वह खबर दो-दो कालम में आती है। होना तो यह चाहिए था कि राजेन्द्रबाबू ने जो यह काम किया उसकी खबर देहात-देहात घर घर जाकर देनी चाहिए थी।

संकट जगा रहा है

इस तरह त्याग के लिए जनता आज उदासीन है। अपनी मुस्ती आज देश में है। और अब आज चीन के साथ सामना करने का मौका आ रहा है। मौका हमें जगा रही है तो मुझे बड़ी खुशी होती है। अब हिमालय इनकार कर रहा है दोनों देशों का दावे से। इसलिए हम उदासीन रहेंगे तो नहीं बनेगा। हिमालय कह रहा है हम आपको अलग नहीं रहने देंगे। आपको लड़ना है तो लड़ो और खतम होना है तो खतम हो जाओ। पर लोग क्या कहते हैं ? कहते हैं कि हम सब एक होकर चीन के साथ डटकर मुकाबला करेंगे। एक होने के लिए आपको आपत्ति की जरूरत है क्या ? और जब तक आपत्ति नहीं आती है तब तक क्या आप गालियाँ देते रहेंगे ? जब सामना करने का मौका आयेगा तब त्याग करना पड़ेगा। लड़ाई में तो बहुत कठिन जीवन रहता है। लेकिन आज हमारा जीवन बहुत साफ्ट—मुलायम—बना है। भोग विलास में पड़े हैं, रात को जागते हैं सुबह सात-सात आठ-आठ बजे

उष्ण है। धूप नहीं सहन कर सकते ठंड नहीं सहन कर सकते बारिश नहीं सहन कर सकते ऐसी हालत आज है। हम अपना ऐसा नरम जीवन कायम रखेंगे तो टिक नहीं सकेंगे। दूसरे हमारा क्या बचाव करेंगे? क्या आपने यह समझ रखा है कि उधर सेना लड़ती रहे और आप भोग विलास में पड़े रहें, तो आप अपना बचाव कर सकेंगे? मुझे तो आनन्द हो रहा है कि सब लोग जरा जागेंगे, त्याग करना सीखेंगे और नरम जीवन कड़ा बनायेंगे क्योंकि सामने एक खतरा खड़ा है। वह हमें जगा रहा है।

जीवन के लिए समीकरण

जैसे $H_2+O=$ पानी यह समीकरण रसायन में आता है वैसे ही मैंने जीवन का एक समीकरण बनाया है—$\text{त}_2+\text{भ}_1=$जीवन। त्याग जीवन में दो मात्रा में होना चाहिए और भोग एक मात्रा में। तब जीवन बनता है। आज तो तीनों मात्राओं में भोग चल रहा है।

वे योगी के समान थे

लोकमान्य की स्मृति में आज यह कहा। हमारे सामने उन्होंने अपनी मिसाल पेश की है। वे योगी के समान रहते थे और परमेश्वर पर श्रद्धा रखते थे। उनकी स्मृति में हम यह जीवन का समीकरण अपने जीवन में लायें।

इन्दौर —तिलक पुण्य तिथि के अवसर पर

१ ८ ६०

ाह-मशविरा करना चाहिए। यह एक बहुत बड़ा
ने इस नाम दिया है—बोधयन्त परस्परम्।
क्रिया होनी चाहिए। मैं बोध देता हूँ तो मैं गुरु और
लेकिन कभी आप मुझे बोध देंगे और तभी मैं
र देते हैं और मैं आपको। वहाँ भक्ति-भाग हो गया।
ा है 'यमक हुम पूरा यमन हुम'—आपस में
काम करना चाहिए। फिर सबका मत चित्त होगा।
क्रम बनता है। इसके माने यह है कि मेरा चित्त
ने है और मैं आपका। इसलिए अन्योन्य विश्वास है।
।

अन्योन्य विश्वास का बहुत कमी है। गहराई में
ानिया नहीं की जाती। कुछ अंश को जानते हैं
नहीं इसलिए अन्दाज लगाते हैं। परन्तु कुछ गलत
रे पर गलत हेतु का आरोपण होता है। विश्वास
० आ० में आमने-सामने टेबल पर बातचीत करने
न अन्योन्य विश्वास नहीं होता। सामनेवाला किस
के शब्द का अर्थ क्या है? याने एक शब्द में दस
और हेतु का आरोपण करते हैं। इसमें ज्ञान
विश्वास अधिक करने के बजाय एक-दूसरे को गलत
सम्मेलन टल गया। कोई कहते हैं कि यह ठीक
दूसरे पर आरोप है कि आपके कारण यह
दूसरे के हेतु पर आ र रहे हैं।

र आज अन्ति यही हालत होनी है—
ना या उधर हो, या भूदान-मण्डल
है। हमारा चित्त वह नहीं
। और बाकी के लिए

'समान चित्त'

'एकचित्त बनो' यह नहीं कहा। 'एकचित्त बनेगा' तो विविधता का लाभ नहीं मिलेगा। एकतानता आयेगी। विचार में वृद्धि नहीं होगी। विचार का संशोधन नहीं होगा। जो विचार मेरा है, वही आपका हो, तो हम इकट्ठा क्यों होंगे? एकचित्त बनेंगे तो विचार और चिन्तन के लिए एकत्र होने की जरूरत नहीं रहेगी। दूसरे काम के लिए भले ही इकट्ठा हों। एकचित्त होगा तो समझना चाहिए कि प्रलय होगा। चित्त-लय होगा और चित्त लीन होने पर दुनिया का लोप होगा, लय होगा। साम्यावस्था में गुण क्रिया समाप्त होगी। समान चित्त की बात भी नहीं है। यानी किसी एक प्रसंग पर सब एक हो गये। एक सामान्य कार्यक्रम तय किया तो समान चित्त हो गया। लेकिन यह छोटी चीज है। उस प्रोग्राम पर लोग एकता करते हैं और उसे अमल में लाने की कोशिश करते हैं। हम भी कश्मीर में वह कोशिश कर रहे हैं। लेकिन एकचित्त यानी प्रलय का लक्षण। यह बुरी बात तो नहीं है लेकिन चित्त का प्रलय होगा तो प्रकृति का लय होगा। यानी हमारी जीवनचर्या नहीं रहेगी। यह है एकचित्त और समान चित्त। समान चित्त यानी सर्वसामान्य कार्यक्रम, जिसमें सर्वसाधारण मन समान रहेगा। भारत के लिए हम यही सुझाव दे रहे हैं कि कोई ऐसा कामन प्रोग्राम हो जिसमें मिनिमम एग्रिमेंट हो। और बातों में चाहे मुख्तलिफ राय हो लेकिन ऐसा एक प्रोग्राम बनाने के लिए हम एक ■ जाय नहीं तो पार्टियाँ नाहक टकराती हैं। इसलिए न्यूनतम साधारण मन समान रहे, ऐसा प्रोग्राम करना चाहिए।

अन्योन्य बोध

'एकचित्त और समान चित्त से भी भिन्न जो सहचित्त शब्द है वह बहुत जानदार है अच्छा है। उसमें समान चित्त का विरोध नहीं है लेकिन सहचित्त होना आवश्यक है। आप और हम बार-बार इकट्ठा होते हैं इस तरह सहचिन्तन की प्रक्रिया की जरूरत महसूस होनी चाहिए।

एक-दूसरे के साथ सलाह-मशविरा करना [illegible] मल-स्मरण है। गीता ने इसे नाम दिया है [illegible] परस्पर भावना का क्रिया होना चाहिए। मैं [illegible] आप शिष्य बनते हैं। लेकिन कभी आप [illegible] आपको। आप मुझे बोध देते हैं और मैं [illegible] कुरान शरीफ में आता है [illegible] हम पूरा [illegible] सलाह-मशविरा करके काम करना चाहिए। [illegible] उसमें अनेकविध कार्यक्रम बनता है। [illegible] आप पूरी तरह से जानते हैं और मैं आपको। [illegible]

परस्पर अविश्वास

आज दुनिया में परस्पर विश्वास का [illegible] पत्थर समझने का कारण नहीं भी [illegible]। [illegible] कुछ मन का नहीं जानते इसलिए [illegible] जानते हैं और एक-दूसरे पर [illegible] हेतु का [illegible] बैठते हैं। यू० एन० ओ० में आमने-सामने [illegible] के लिए बैठते हैं लेकिन परस्पर विश्वास [illegible] हेतु से बोलता है, [illegible] का अर्थ क्या है [illegible] अर्थ निकालते हैं और हेतु का आरोपण करते हैं। [illegible] बनता है और उसमें विश्वास अधिक [illegible] समझ लेते हैं। [illegible] नहीं हुआ। दोनों एक-दूसरे पर आरोप करते हैं कि [illegible] घटना हुई। दोनों एक-दूसरे [illegible] पर आरोप कर रहे हैं।

गलतफहमी का चक्र

इस तरह सारी दुनिया में [illegible] है। [illegible] चाहे वह कांग्रेस हो या [illegible] हो। वहाँ भी परस्पर [illegible] जानना और उसका हम [illegible]

गलतफहमी। थोड़ा-सा जो समझ में आया उसमें ज्यादा अन्दाज लगा लिया और अनुमान से ज्यादा गलतफहमी हो गयी। इस तरह शब्दों के जरिये सम्यक ज्ञान के बजाय गलतफहमी ज्यादा बढ़ती है।

समय बरबाद कब होता है ?

अभी इन लोगों ने सुनाया कि आश्रम में दो बार इकट्ठा होना चाहिए। मैं इस पर जोर देता हूँ कि कार्यकर्ताओं का एकत्र होना ही चाहिए, चाहे उनका समय बरबाद हो क्यों न हो। समय बरबाद कब होता है ? एकत्र होने से समय बरबाद नहीं होता। जिस समय मन और चित्त में विकार आया वह समय बरबाद हुआ। निर्विकार चित्त है और परस्पर मिलन हो रहा है, उसमें समय जाया नहीं होता। इसलिए बार बार एकत्र आने की कोशिश करना चाहिए।

स्वच्छ मन होकर प्रार्थना

एक दफा मैंने एक किताब पढ़ी—मिशनरियों के काम के सम्बन्ध में। इंग्लैंड से मिशनरी आये और हिन्दुस्तान की अनेक जबानों में उन्होंने बाइबिल का तर्जुमा किया। वे कलकत्ता में रहते थे। परिवार के साथ एकत्र रहते थे। उनका खाना-पीना सब साथ होता था। उन्होंने अपना एक कम्यून बनाया। ईसाइयों में रविवार के दिन सामूहिक प्रार्थना का रिवाज है। ईसा ने बोध दिया है जब कभी आप सामूहिक प्रार्थना में जाय अपना दिमाग साफ कर लीजिये। जिनके साथ आप प्रार्थना में बैठेंगे उनके प्रति मन में दूरी भाव न रहे। तभी प्रभु आपकी प्रार्थना सुनेंगे और तभी प्रार्थना का अच्छा परिणाम आता है। उन लोगों ने तय किया कि रविवार के दिन प्रार्थना के लिए जाना है, तो शनिवार को एकत्र बैठेंगे और एक-दूसरे के लिए मन में जो संशय आये होंगे जो बाद दाग होंगे, वे सब सामने रख देंगे। जैसे गंगा पर कपड़ा धोने के लिए जाते हैं वैसे मनोमल धोने के लिए एक साथ बैठेंगे और फिर स्वच्छ मन होकर रविवार को प्रार्थना करेंगे। तो ज्यादा-से-ज्यादा एक

'चित्त को धो लें'

समान चित्त में एक कॉमन प्रोग्राम की गुंजाइश है, लेकिन सह चित्त न हो तो काम में जोश नहीं आयेगा। एक दूसरे के लिए मन में अविश्वास हो तो एक-दूसरे को टालने की कोशिश होती है। फिर उसके लिए कार्यकर्ता को दूसरी जगह पर भेजते हैं। जैसे औरंगजेब करता था। एक सरदार के साथ नहीं जमा तो उसको आसाम में भेज दिया। आपस में एक-दूसरे के हेतु के लिए गलतफहमी न हो, इसलिए कभी-कभी बिना काम के भी मिलें और अपने अपने मन में एक-दूसरे के लिए जो शंका है वह साफ कर दें, मन को धो लें। हर सप्ताह इस तरह मिलते रहें, इकट्ठा होते रहें। इस हफ्ते का मैल हम हफ्ते में खतम करें। नहीं तो वही मैल चित्त पर रहेगा और एक-एक हफ्ते में साफ नहीं होगा तो उस मिट्टी का पत्थर बनेगा।

प्रार्थना के लिए तैयारी

यहाँ आश्रम बनने जा रहा है। इसलिए यह विचार मैंने रखा। परस्पर सह चित्त नहीं होगा तो काम नहीं बनेगा। ईसा ने जो प्रार्थना का तरीका बतलाया वह बहुत ही अच्छा है। जैसे हम रसोई की तैयारी किये बिना खाने के लिए नहीं बैठते हैं वैसे प्रार्थना के लिए भी तैयारी करनी चाहिए। प्रार्थना के लिए तैयारी का मतलब यह नहीं कि तबला पेटी तानपूरा लाया जाय। बल्कि प्रार्थना के लिए साफ अच्छा, धोया हुआ चित्त ले जाना चाहिए। गंदा चित्त धोने का काम परमेश्वर को हम न दें। चित्त साफ करने का काम, धोने का काम हमारा ही होगा। इस तरह हम साफ चित्त लेकर प्रार्थना के लिए जायें तभी प्रार्थना का लाभ मिलेगा।

इन्दौर
८.८.६०

—प्रार्थना प्रवचन

: ४ :

तुलसी-पुण्यस्मरण

दो शक्तियाँ

आप और हम यहाँ विनम्र भाव से और भक्तिभाव महानुभाव तुलसीदास का स्मरण करने बैठे हैं। हिन्दुस्तान पर और दुनिया पर भगवान् की कृपा रही है कि उसने बीच-बीच में राह दिखाने के लिए भूले और भटके हुए लोगों को धर्मपथ पर लाने के लिए महापुरुषों को भेजा। ऐसे अनेक महापुरुषों के नाम दुनिया में लोकप्रिय हैं। यद्यपि इस वक्त दुनिया में Materialism का यानी भौतिकता का बोलबाला है, फिर भी दुनिया के चित्त पर आज भी असर है, महापुरुषों के वचनों का और उनके जीवन की स्मृतियों का। यह असर बननेवाला है घटनेवाला नहीं है। जैसे-जैसे भारी ताकत भौतिक शक्तियाँ मनुष्य के हाथ में अधिकाधिक उत्पन्न हुई हैं वैसे वैसे उतनी ही तीव्र आवश्यकता मालूम हो रही है आध्यात्मिकता की। आध्यात्मिकता और विज्ञान-शक्ति दोनों मनुष्य-जीवन के लिए आज की स्थिति में बहुत मददगार हैं। जैसे मोटर में रफ्तार की एक मशीन होती है जिससे रफ्तार बढ़ायी या घटायी जा सकती है और मोटर को दिशा-दिखाने के लिए और एक यन्त्र होता है, जिससे दिशा का बोध होता रहता है। दोनों में से एक ही यन्त्र हो तो मोटर काम नहीं कर सकती। इसी तरह हमारे इस शरीर में भी भगवान् ने दो यन्त्र जोड़े हैं। एक को प्राण-शक्ति कहते हैं और दूसरे को बुद्धि-शक्ति। प्राण-शक्ति से हम तरह-तरह के काम करते हैं हमारे काम को वेग मिलता है। अगर प्राण क्षीण और कमजोर रहा तो हम चल नहीं सकते दौड़ नहीं सकते। तरह-तरह के काम करने में ताकत अपूर्ण पड़ेगी। इसलिए प्राण-शक्ति क्षीण हो ...

बुद्धि शक्ति क्षीण हो तो क्या काम करना चाहिए सूझेगा नहीं। ये दो साधन देह-यंत्र के लिए हैं। देह भी भगवान् का पैदा किया हुआ एक यंत्र है अद्भुत यंत्र है। यंत्र में दो शक्तियाँ—गतिवर्धक और दिशा-दर्शक हैं। ऐसी दो शक्तियाँ इस देह में भी हैं।

विज्ञान-शक्ति

जैसे मोटर के लिए दो यंत्र जरूरी होते हैं, वैसे ही समाज धारणा के लिए दो शक्तियों की जरूरत रही है रहेगी रहती है। एक है—साइन्स या विज्ञान। जब अग्नि की खोज नहीं हुई थी, तब रसोई बनाने का ज्ञान नहीं था। जब पचनेन्द्रिय कमजोर थी दाँत ढीले पड़ते थे, खुराक का इंतजाम नहीं था। अब भाप की शक्ति की नयी खोज हुई है। पेट्रोल की शक्ति की खोज हुई है। बिजली की शक्ति की खोज हुई है और आगे अणुशक्ति का भी उपयोग मनुष्य के जीवन में बहुत होगा। जीवन का बाह्य रूप ही बदल जायगा। अब यह लाउडस्पीकर है। जब नहीं था तब इतने लोगों का एड्रेस करना बहुत मुश्किल था बहुत चिल्लाना पड़ता था। लाख-लाख लोग होते थे, तो कितना ही चिल्लाओ, काम नहीं हो सकता था। महात्मा गौतम बुद्ध को ३० ३५ साल की पद-यात्रा में जितने श्रोता नहीं मिले होंगे उतने श्रोता मुझे ६ साल की पद-यात्रा में मिले। इसमें न महात्मा बुद्ध की कोई कमी थी न मेरा कोई गुण है। यह साइन्स का गुण है। लेकिन पाँच-पचास लोग ऐसे ही सुन सकते थे। उनका आध्यात्मिक असर ज्यादा होता था। ज्यादा लोग हों तो असर भी ज्यादा हो यह जरूरी नहीं है लेकिन अनेक लोगों को सुनाने की यह सहूलियत साइन्स के कारण मिली है। यह मेरा चश्मा न हो तो मैं दूर का नहीं देख सकता हूँ और चलना मुश्किल होता है। चश्मे ने आँखों को नवजीवन दिया है। ऐसी मिसालें मैं दोहराऊँगा नहीं। दो सौ साल पहले जीवन का जो स्वरूप था वह आज नहीं रहा। भविष्य में तो अणुशक्ति का उपयोग गाँव-गाँव में होगा। अणुशक्ति विकेन्द्रित होगी। बिजली अभी उतनी विकेन्द्रित नहीं हो रही है लेकिन अणुशक्ति

गाँव-गाँव में विकेन्द्रित होगी। उस हालत में सफाई का काम आज जिस ढंग से हो रहा है उससे कुछ भिन्न प्रकार का हो जायगा। यहाँ (इन्दौर में) [illegible] तारीख से सफाई-सप्ताह प्रारम्भ हो रहा है। उसमें तरह-तरह के औज़ारों को लेकर मल-मूत्र इत्यादि की सफाई होगी। लेकिन २५ वर्षों बाद ऐसे औज़ार या यन्त्र आयेंगे कि मनुष्य को हाथ से कोई काम करने की जरूरत नहीं रहेगी। खाद भी यांत्रिक ढंग से होगा सफाई भी यांत्रिक ढंग से होगी। सब कुछ आसान होगा। आज हम भंगी-मुक्ति की बात करते हैं—वह स्वयमेव हो जायगी। भंगी की जरूरत ही नहीं रह जायगी। ये सारी बातें विज्ञान में हो रही हैं और आगे भी होंगी। विज्ञान की शक्ति मनुष्य के जीवन को बनाती है। उस जीवन की रफ्तार गति बढ़ाती है। यह आज का एक लक्षण है जो बहुत व्यापक स्वरूप में प्रकट हो रही है।

आध्यात्मिक शक्ति

रफ्तार की यह शक्ति जितने जोर से बढ़ेगी उतना ही जोरदार दिशा दिखानेवाला यन्त्र होना चाहिए वह उतना ही सक्षम होना चाहिए। बैलगाड़ी को धीरे से मोड़ सकते हैं। बैलगाड़ी धीरे धीरे जायगी, लेकिन मोटर का, २०० मील की रफ्तार की मोटर का पहिया मोड़ने के लिए यन्त्र नहीं रहेगा, तो मोटर टकरायगी। रेलवे का इंजन जोर से दौड़ रहा है उसे रोकना है, मोड़ना है वहाँ यन्त्र नहीं होगा तो इंजन गिर जायगा। वेग-शक्ति जितनी जोरदार—उतनी ही जोरदार दिशा दिखानेवाली शक्ति होना चाहिए। जितना जोरदार साइंस होगा उतना ही जोरदार आध्यात्मिक विचार होना चाहिए। अध्यात्म दिशा दिखायेगा, साइंस रफ्तार यानी वेग बढ़ायेगा।

अब दिन-ब-दिन साइंस बढ़ता ही रहेगा। विज्ञान-शक्ति इस जमाने में उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जहाँ तक मैं समझता हूँ साइंस ने इन १२ सालों में इतनी प्रगति की है कि पहले के १२०० साल में नहीं की। जहाँ साइंस इतना जोरदार बढ़ा है, वहाँ दिशा दिखानेवाले यन्त्र की अत्यन्त जरूरत है। अध्यात्म की जरूरत जितनी आज है उतनी

थी। बहुत से लोग कहते हैं कि यह साइन्स का जमाना है, इसमें अध्यात्म की क्या चलेगी ? उसकी क्या जरूरत है ? लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि जब साइन्स का जमाना नहीं था तब अध्यात्म को कौन पूछता था ? उस समय तो परलोक की बात सोचते थे। लोगों को समझाया जाता था कि अच्छा काम करो तो मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा, नहीं तो नरक मिलेगा। इस तरह मरने की बात समझाकर लोगों को किसी तरह सन्मार्ग पर रखना पड़ता था। यह भी कहा जाता था कि गलत काम करोगे, तो यहीं के यहीं गलत फल पाओगे। आज यह भी कहा सकते हैं। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर हमला करेगा तो फौरन दोनों राष्ट्र खतम हो जायेंगे। ऐसा साइन्स विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में दी है कि गुस्सा out of date है। क्षोभ, क्रोध, द्वेष यह व्यक्ति-व्यक्ति के मन में भले चले, उससे नुकसान नहीं। लेकिन सीमा-सीमा के बीच गुस्सा, क्रोध, क्षोभ चलेगा तो मरने के बाद नरक नहीं—यहां के यहीं खतम हो जायेंगे। ऐसा प्रत्यक्ष फल दिखा सकते हैं। पुराने जमाने में अध्यात्म को पूछता कौन था।

तुलसी और शंकर

तुलसीदासजी की बात बताऊं। वे पहले काशी में एक घाट पर रहते थे। वहां लोगों ने उनको इतना सताया कि वे दूसरे घाट पर भाग गये प्रह्लाद से मणिकर्णिका घाट पर। वहां भी लोगों ने उनको बहुत सताया अस्सी घाट पर वे लोगों ने बहुत सताया। वहां से भी भागे दूसरे घाट पर गये। आखिर बहुत सताया तो सब छोड़कर जहाँ काशी का आखिरी हिस्सा है—टूटा-फूटा घाट था, वहां अस्सी घाट पर रहे। वहां चैन से रहे। वहां ज्यादा बस्ती नहीं थी। आज उसके दाँए में हिन्दू विश्वविद्यालय बना है और कुछ बस्ती है। लेकिन उस जमाने में बस्ती नहीं थी। इस तरह उन्हें बहुत तंग किया गया। लेकिन आज उनका नाम लेकर आदर से भक्ति से प्यार से झुक जाते हैं। यही हाल कबीर ज्ञानदेव नानक, नामदेव का हुआ। अब मैं कितने नाम लूँ। शंकराचार्य इतने महान् थे लेकिन उनका भी क्या हाल था, उनके जमाने में। उन्होंन

अपनी माँ का वचन दिया था कि एक बार मिलने आऊंगा। संयासी होने के बाद भी ऐसा वचन दिया था। संयास की इजाजत लेकर व गये थे और कुछ वर्षों के बाद वहाँ वापस आये तो माँ की मृत्यु का समय था। उस समय उन्होंने माँ के लिए श्रीकृष्ण का स्तोत्र बनाया। बड़ा प्रसिद्ध है कृष्णाष्टकम्। वह माँ से बुलवाया, माँ को ईश्वर का दर्शन हुआ और माता मर गयी। अब सवाल आया कि माता का दाह-संस्कार कौन किया जाय? क्योंकि शंकराचार्य ने ब्रह्मचर्य से ही संयास लेने का महापातक किया था। यानि बीच में गृहस्थाश्रम टालने का महापातक उस जमाने के लोगों की अकल था कि अगर संयास लेना ही है, तो ब्रह्मचर्य में गृहस्थाश्रम उसके बाद वानप्रस्थाश्रम और बाद में संयास लेना चाहिए। ब्रह्मचर्य से संयास लेना 'कलिवर्ज्य' है। कलिवर्ज्य माने निषिद्ध। वह काम शंकराचार्य ने किया था। इसलिए उनका सामाजिक बहिष्कार किया गया। उनकी जाति का नाम नम्बूद्रि था। ऊँचा-से ऊँचा जाति में से नम्बूद्रि एक जाति था। उस जाति का एक भी मनुष्य माँ का लाश उठाने के लिए नहीं आया। अब वहाँ से लाश को उठाकर श्मशान ले जाना और वहाँ दहन करना उनके लिए एक समस्या हो गया इसलिए शंकराचार्य ने तलवार से माँ की लाश के तीन टुकड़े किये। अब आप देखिये समाज अपने हठ में कहाँ तक बढ़ सकता है और चुपचाप महापुरुष कहाँ तक सहन कर लेते हैं इसका एक चित्र आपके सामने खड़ा होता है। एक-एक टुकड़ा लेकर शंकराचार्य ने माँ का दहन किया। एक-एक टुकड़ा अलग अलग जलाया। इसके बाद शंकराचार्य इतने महान् हो गये कि नम्बूद्रि जाति में यह विधि ही है कि मरने के बाद लाश श्मशान में ले जाते हैं तो लाश पर तीन लाल निशान किये जाते हैं। शंकराचार्य को माँ की लाश के टुकड़े करने पड़े—उसके स्मरण के लिए उनके आदर के लिए यह किया जाता है। इतना आदर आज उनके बारे में वहाँ है। पर जब वे जिन्दा थे तब आदर का सवाल नहीं था। मरने के बाद इतना आदर हुआ।

विज्ञान अध्यात्म विद्या की तरफ दौड़ रहा है

सारांश, पुराने जमाने में आध्यात्मिक विद्या का स्तर शिर पर उन्नत थे ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। महात्मा गौतम बुद्ध का खतम करने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य निकला था। भगवान् कृष्ण पर शिशुपाल ने आक्रमण किया था यह जाहिर है। इसलिए आज यह मानने की कोई जरूरत नहीं है कि पुराने जमाने में अध्यात्म-विद्या की कदर ज्यादा था। बल्कि समझना चाहिए कि आज दुनिया में सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं, जितनी उसकी कदर है उतनी पहले कभी नहीं थी। साइन्स भी धीरे धीरे स्वयमेव अध्यात्म विद्या की ओर दौड़ा जा रहा है, खिंचा जा रहा है। और सारी दुनिया में चेतन भरा है, ऐसी शंका साइन्स को हो रही है। साइन्स बड़ा नम्र होता है। किसी चीज का फैसला आग्रहपूर्वक नहीं देता। साइन्स निरीश्वरवादी की तरह नहीं बोलता। साइन्स कहता है कि ईश्वर शायद होगा, शायद नहीं होगा। अभी तक हमारी खोज में उसका निश्चय नहीं हुआ है। साइन्स न कभी आस्तिक और न कभी नास्तिक। जिसे हम जड़ कहते हैं वह जड़ नहीं बल्कि सुप्त चैतन्य, सोया हुआ चेतन है। एक सुप्त चैतन्य है दूसरा जाग्रत चैतन्य है। मान लीजिए कोई गणितज्ञ सोया है। सोने पर उसका ज्ञान खतम नहीं हुआ। वह ज्ञान सुप्त है। जागने पर प्रकट होगा। उसी तरह यह खम्भा है। उसमें नरसिंह भरा है। आपको कहानी मालूम है। प्रह्लाद ने खम्भे पर लात मारी तो चैतन्य-स्वरूप प्रकटा। साइन्स अभी लात मार रहा है खम्भे पर और उसे आभास हो रहा है कि शायद उस खम्भे में से चैतन्य निकलेगा। सारी दुनिया चेतनमय हो सकती है ऐसी शंका उसे है। पहले शंका ही होती है, उसके बाद खोज होती है और उसके बाद प्राप्ति होती है। साइन्स भी धीरे धीरे आगे बढ़कर अध्यात्म के साथ मिल जायगा और दोनों एकत्र हो जायेंगे ऐसा दिन नजदीक आ रहा है।

अध्यात्म को सँभालें

आज अध्यात्म की जरूरत है, क्योंकि साइन्स की बहुत भारी ताकत

मनुष्य के हाथ में आ गयी है। शास्त्र का वेग बढ़ रहा है। वह गलत दिशा में जायगा तो नुकसान होगा, इसलिए विज्ञ मनुष्य को होना चाहिए। आप मालूम न होइये। जिसमें न यह अहर्निशा निरन्तर अध्यात्म दिया जिन्होंने उस भारतीय संस्कृति को सँभालें तो आप दुनिया के बचानेवाले होंगे और आपको दुनिया को बचाने का भाग्य प्राप्त होगा। लेकिन आप अध्यात्म को गँवायेंगे। वह बहुत बड़ी विरासत है। उसे आप गँवायेंगे तो सारी दुनिया का नाश होगा। दुनिया आलोकित होने के लिए लाभ पाने के लिए भारत का प्यार देख रहा है। जितना हम पश्चिम की तरफ देखते हैं उसके शास्त्र से प्रभावित होकर उतना ही वे भारत की ओर देखते हैं। राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक मसले दुनिया को तंग कर रहे हैं। इसलिए कोई आध्यात्मिक तजवीज तरकीब भारत ढूंढ़ निकालेगा इस दृष्टि से आकर्षित होकर दुनिया के लोग भारत की तरफ देखते हैं। दुनिया के लोग हमारे पास आते हैं। शायद ही कोई राष्ट्र होगा जिसके लोग न आये हों। वे हमारे पास रहते हैं, देखते हैं और अपने देश में जाकर कहते हैं कि भारत में नया ही आविष्कार हो रहा है। क्या हो रहा है? दान प्रेम से माँगा जा रहा है और प्रेम से दिया जा रहा है। एक अजीब बात लगती है उनको। लोग मुझसे पूछते हैं कि आपने कितना काम किया? मैं कहता हूँ कि ६ लाख एकड़ जमीन मिली है, ज्यादा तो नहीं हुआ। लेकिन बात है कि उसका हिन्दुस्तान को लाभ हुआ है—दूसरे देशों को क्या फायदा हुआ है? अमेरिका और यूरोप को क्या लाभ हुआ है? लेकिन वहाँ के लोग प्रभावित होते हैं क्योंकि मसले हल करने की कुंजी हाथ में आ रही है और यह ऐसी कुंजी है कि इससे दुनिया के मसले हल हो सकते हैं। इसलिए वे और चाहते हैं कि हमें यह मिले और शान्ति से मसले हल करने की कुंजी हाथ लगे, ऐसा वे सोचते हैं। आज दुनिया त्राहि त्राहि कर रही है और दुनिया में इस वक्त शान्ति की बहुत प्यास है। इसलिए दुनिया के कुल देशों में अध्यात्म की तरफ आज जितना झुकाव है उतना पहले कभी नहीं था। इसलिए गलतफहमी में

साइन्स बढ़ रहा है, तरह-तरह की मशीनें बन रही हैं, तो अध्यात्म की क्या चलेगी ? दस लाख लोगों ने हमें दान दिया। हम समझते हैं कि उनमें अनासक्ति से दान हुए होंगे, लेकिन जमीन का टुकड़ा, जो बहुत प्यारा लगता है, वह भी एकाध लाख ने दिया हो, तो भी अध्यात्म शक्ति उसमें है।

आज भी मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, हिन्दीवालों से और मराठीवालों से, तुलसी रामायण और ज्ञानेश्वरी की बराबरी की कौन किताब छपती है ? बताइये, है कोई दूसरा नाम ? छपाई की मशीनें आयी हैं—यह सहूलियत हुई है। सैकड़ों नयी-नयी किताबें लिखी जा रही हैं, तो ज्ञान का प्रचार खूब शीघ्रता से होना चाहिए। लेकिन नहीं हो रहा है। पहले मुद्रण यंत्र नहीं था, तो पाठ-भेद रहते थे, गलत प्रतियाँ भी फैलती थीं, गलत प्रचार और अपप्रचार भी होता था। आज तो हमने प्रिंटिंग प्रेस निकाला है—यह सहूलियत है। सहूलियत होने पर भी १०० सालों में हिन्दुस्तान की १५ भाषाओं में मैं जानता हूँ ऐसा कोई नया ग्रन्थ निर्माण नहीं हुआ, जो कि कुरान, ग्रन्थ साहब, तुलसी रामायण या ज्ञानेश्वरी की बराबरी खपत में करे। अगर मनुष्य का मन अध्यात्म की दृष्टि से परावृत्त हुआ होता, तो इन ग्रन्थों की आज इतनी खपत क्यों होती है ? दूसरी क्यों नहीं खपती ? इसका कारण क्या है ? लाखों की तादाद में धार्मिक किताबें बिक जाती हैं। आज बाइबिल, कुरान शरीफ, धम्मपद ये ग्रन्थ जितने खपते हैं, उतनी कोई किताब भारत में खपती नहीं, दुनिया में भी नहीं खपती। अतः हमें मानना चाहिए कि अध्यात्म शक्ति जोरदार है। मेरा पत्र-व्यवहार हिन्दुस्तान के हर प्रान्त से चलता है। उसमें जितने भी पत्र ऐसे आध्यात्मिक आते हैं, मार्गदर्शन चाहनेवाले—तीव्र भाव से, संवेदनायुक्त, त्याग करने की तरफ रुझान दिखानेवाले, इस तालीम से ऊबे हुए कॉलेज के विद्यार्थियों के पत्र। भारत की यह जागृति मैं जानता हूँ। मैं जितना भारत को जानता हूँ, उतना और कोई नहीं जानता—यह मेरा assessment है, कसना है। भारत में अध्यात्म-शक्ति खूब जोर से जाग रही है।

तुलसी रामायण की विशेषता

सार यह कि तुलसीदासजी के जमाने की अपेक्षा आज अध्यात्म की

ज्यादा जरूरत है। इसलिए तुलसी रामायण पहले करती थी उससे ज्यादा काम आज करेगी। पुराने ग्रंथ का थोड़ा परिष्कार करने की जरूरत हाती है। मलिनता आयी है तो धोना पड़ता है थोड़ा संशोधन जरूरी होता है। वाल्मीकि रामायण का भी तुलसीदास ने अनुवाद नहीं किया संशोधन ही किया। दोनों की तुलना करो, तो मालूम होगा कि तुलसी रामायण वाल्मीकि रामायण का न तर्जुमा है न सन्देश बह संशोधन ही है और वह हिम्मत के साथ किया है अपने बाप की विरासत समझकर। बाप के मकान में खिड़की नहीं है तो अपनी दृष्टि से उतनी खिड़की बना ली। वाल्मीकि-रामायण में अपनी दृष्टि से तुलसीदासजी ने जहाँ जरूरत मालूम हुई वहाँ संशोधन किया। बस हमें भी तुलसी रामायण का संशोधन करना होगा। उसमे तुलसीदासजी के प्रति आदर कम नहीं होगा। संशोधित तुलसी रामायण पुराने जमाने से ज्यादा काम करेगी। वह पहले उत्तर हिन्दुस्तान तक सीमित था अब वह दक्षिण में भी चलेगा।

जेल में मेरे साथ भारतन् कुमारप्पा थे। वे मेरे पास हिंदी सीखने के लिए आये। उनकी मातृभाषा तमिल थी। उसे वे भूल गये थे। अंग्रेजी में उनका कारोबार चलता था। मैंने उन्हें हिंदी सिखाने के लिए तुलसी रामायण ली। पहले ही व्याख्यान में उनसे कहा कि बाइबिल और शेक्सपियर इकट्ठा करेंगे, तो बनेगा तुलसीदास। तो वे एकदम चौकन्ना हो गये और कहने लगे 'एक वाक्य में कुल सार आपने बता दिया कि तुलसी रामायण क्या जादू करता है और लोक-मानस पर उसका इतना प्रभाव क्यों है इसका पता मुझे आज चला। आज बाइबिल का प्रभाव कम है। उसकी भाषा अत्यन्त मधुर और सरल है। शेक्सपियर तो महान् कवि हो गया। वह अद्वितीय साहित्यिक था। दोनों तुलसीदास में है यह जब मैं कहता हूँ तो इससे बढ़कर तुलसी रामायण का कोई वर्णन नहीं हो सकता। एक जमाने में मैंने कहा था कि तुलसी-महोत्सव का ठीका साहित्यिकों का हो इसे मैं पसन्द नहीं करता। वह उनका ही हक नहीं है उनका भी है। साहित्यिक तुलसी-महोत्सव करते है वह तरह-तरह का

कविता करते हैं, आनन्द करते हैं—जैसे कवि-सम्मेलन में होता है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि तुलसीदासजी सिर्फ साहित्यिक नहीं थे वे सिर्फ कवि सिर्फ होते, तो आज उनका यह स्थान नहीं और जो ईश्वरीयता तुलसी रामायण को हासिल [redacted] वह न होती।

श्रद्धानन्द की श्रद्धा

एक किस्सा सुनाऊं। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपना चरित्र लिखा है उसका नाम है 'कल्याण-मार्ग का पथिक'। स्वामी श्रद्धानन्द आर्य समाज की पद्धति में पले हुए थे। आर्य समाज में बहुत गुण हैं साथ-साथ कुछ आग्रह हैं या मद है, जो भी संप्रदाय—सब संप्रदायों में होते हैं कुछ लिखते में होते हैं, ग्रंथ प्रामाण्यवाद होता है वैसा उसमें भी होता है। स्वामी दयानन्द ने अप्रामाण्य ग्रंथों की एक सूची बनायी [redacted] और न पढ़नेवाले ग्रंथों की सूची में उन्होंने तुलसी रामायण का नाम लिख लिया है। वे बहुत बड़े सुधारक थे और सुधार के ख्याल से ही ग्रंथों को देखते थे। थोड़ा कभी लगी तो उसमें तुलसी रामायण का नाम लिख लिया। अब तुलसीदास का नाम बड़ा है, स्वामी दयानन्द भी महान्, तुलसीदास भी महान् और आप और हम भी ऐसे महान् कि जो दोनों को हजम करते हैं। एक वैराइटी होती है। हिन्दुस्तान में एक वेदान्ती ना है। उस परम्परा में स्वामी श्रद्धानन्द आते हैं। उन्होंने अपनी कहानी लिखी है। उसमें अपने पिता के बारे में एक जगह लिखा है कि पिताजी न्यायाधीश थे। उनके पास चोरों के मुकद्दमे आते थे। जिन पर चोरी का आरोप आता था, उनसे वे कहते थे कि तुलसी रामायण को हाथ में लेकर कहो कि तुमने चोरी की है या नहीं? वह बन्दा हाथ में तुलसी रामायण लेकर कहता था कि 'जी हाँ मैंने चोरी की है।' और उस ग्रंथ का नाम स्वामी दयानन्द ने न पढ़नेवाले ग्रंथों की सूची में रखा। श्रद्धानन्दजी की राय वैसी नहीं थी।

तुलसी पतितों के प्रतिनिधि

ग्रंथों में कुछ बातें ऐसी होती हैं जिनको आप जरूरत न समझें

हो। उनमें सुधार की गुंजाइश होती है। लेकिन उनको हम अप्रमाणित न मानें। हम उनका परित्याग कर सकते हैं, उन्हें परिष्कृत कर सकते हैं। तुलसी रामायण में यह खूबी है। महात्मा गांधी की बात, सत्यनारायण के साथ उनका दिल एकरूप हो गया था। वे अपने को दरिद्र-नारायण के प्रतिनिधि मानते थे और थे भी। दरिद्रों की दुनिया की बात उनके हृदय में रहती थी। उसी तरह से तुलसीदास पतितों के प्रतिनिधि थे, सिर्फ वर्णन करनेवाले नहीं। पापियों में शिरोमणि मैं हूँ—इस तरह अपने को वे पतितों के प्रतिनिधि मानते थे। कलियुग का वर्णन उन्होंने किया 'जो अनभले कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला॥' जो कराल कलियुग में विषम कलियुग में अनभले हैं जिनके आचरण तो कौए के समान हैं और भेष है हंस के समान। 'चलत कुपंथ वेद मग छाँड़े'—वेद के रास्ते को छोड़कर कुपंथ पर चल रहे हैं, कुमार्ग पर चल रहे हैं। 'कपट कलेवर कलिमल भाँड़े'—कपट की मूर्ति हैं, कलेवर कलिमल से भरे हुए हैं। 'बंचक भगत कहाइ राम के'—राम के भगत कहलाते हैं—नाटक मिथ्या। 'किंकर कंचन कोह काम के'—याने कंचन के दास, याने क्रोध के और मोह के दास हैं। यह सारा वर्णन कलियुग के पतितों का पापी पामर आदमी का है। और बाद में क्या लिखते हैं 'तिन महँ रेख प्रथम जग मोरी'—ऐसे लोगों में मेरा नाम पहला है। बाकी के नाम पीछे। कलियुग के दाम्भिकों का वर्णन हम भी करते हैं लेकिन हम कहते हैं 'तुम दोषी, तुम दोषी हो।' दूसरे के दोषों का निरूपण इस जमाने में जितना होता है उतना पहले नहीं होता था। किसी भी अखबार का पन्ना खोलिये दूसरे के दोषों का बढ़ाकर, दोष न हो तो निकालकर रुचिपूर्वक वर्णन करते हैं। लेकिन तुलसीदास ने जो धर्म की ध्वजा उठानेवाले थे अपने को पतितों का प्रतिनिधि माना और अपना धिक्कार किया है और इसलिए वे शुद्ध हो गये। सारे समाज का उत्थान करने के लिए सब प्रकार के अहंकार को छोड़कर वे शुद्ध हो गये और ऐसी भाषा लिखी। 'हिन्दू शिरोमणि' होकर

ऐसी भाषा लिखी—जागबलोक—कोई शास्त्री कहेगा संस्कृत जाननेवाला ? कहेगा 'वात्सल्य' लिखना चाहिए। अब लोगों को व्याकरण सिखाना है कि धर्म सिखाना है ? जिन शब्दों का लोग उच्चारण भी नहीं कर सकते, उनके लिए उन्होंने सरल भाषा लिखी और वे कहते हैं कि बहुत बड़े ग्रंथों का प्रमाण लेकर मैं लिख रहा हूँ। 'धरम न अरथ न काम रुचि' धर्म नहीं कहते, 'धरम' कहते हैं अर्थ नहीं कहते, 'अरथ' कहते हैं, निर्वाण नहीं कहते, 'निरवान' कहते हैं।

पुस्तकें छोड़कर आम समाज समझ सके ऐसी भाषा लिखी। आश्रम नहीं लिखेंगे, आसरम लिखेंगे। इतनी नम्रता थी और ऐसे मुक्त ग्रन्थ, समाज को ऊपर उठाने के लिए गिरे हुओं को उठाने के लिए जरूरी है। पतितों के प्रतिनिधि बनकर, उनके हृदय के साथ तन्मय हो गये। उन्होंने कोई काव्य नहीं लिखा। अन्तर की भावना लिखी। उन्होंने कहा कि ऊपर ऊपर से मैं देखता हूँ लेकिन भगवान् के सामने मैं अपने को दोषी पाता हूँ। यह वृत्ति अन्तर्याम में थोड़ा भी दोष हो तो उसे बड़ा करके देखने की है। सामान्य पतितों के साथ अत्यन्त एकरूप हो गये। इसीलिए सारा हिन्दुस्तान उनके नाम से गद्गद होता है। महात्मा बुद्ध के बाद हिन्दुस्तान में इतना महान् कोई हुआ नहीं। तुलसीदास के समान इतना नम्र कोई हुआ नहीं—बिलकुल आम लोगों के साथ एकरूप होनेवाला अत्यन्त क्षमाशील परम नम्र अन्दर से ही अपने को नीच-से-नीच माननेवाला, व्यवहार के तौर पर नहीं पर अपने को पापी समझनेवाला। राम नाम की महिमा वर्णन करते हैं, राम-नाम से पत्थर तर गये यह तर गया, वह तर गया। ऐसे उदाहरण अनेक दिये और आखिर में कहा

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

जिस नाम के स्मरण से, भाँग से ही तुलसी पैदा होता है। रामजी ने अत्यन्त पापी में से भक्त बनाया। इस तरह का वर्णन किया—राम-नाम की महिमा वर्णन की अपने स्वानुभव की।

आम जनता के लिए धर्म-ग्रन्थ

तुलसीदास ने भारत को बचाने का काम किया। पचास राजा महाराजाओं ने प्रयत्न करके भी जितना नहीं बचाया, आगे-आगे के संतों ने भी जितना नहीं बचाया, उतना तुलसीदास के इस ग्रंथ ने बचाया। हमारे सब ग्रंथ संस्कृत में हैं—गीता, रामायण, भागवत, महाभारत। वह प्राकृत में लायी और एक धर्म-ग्रंथ आम जनता के लिए दिया। धर्म-ग्रंथ में जितना नीतिशास्त्र, सत्पुरुषों या महात्माओं का एक मत, तत्त्वज्ञान का मत, भगवान् की भक्ति का मत, विधि-निषेध का मत, इतना सारा सम्मिलित होता है, तब धर्म-ग्रंथ बनता है। वह केवल भक्तों का गाया गान नहीं होता, केवल तत्त्वज्ञान के भाष्य से नहीं होता। ब्रह्मसूत्र अप्रतिम तत्त्वज्ञान का ग्रंथ है, लेकिन वह धर्म-ग्रंथ नहीं हो सकता। गाथा और कथा कितनी ही अच्छी हो, उनका धर्म-ग्रन्थ नहीं बन सकता। लेकिन इन सबका रसायन बनाकर लोकमान्य और लोकप्रिय की तरकीब जहाँ हो सकेगी, वहाँ धर्म-ग्रन्थ बनता है। ऐसा धर्म-ग्रन्थ तुलसीदासजी ने दिया। यह नहीं कि हिन्दुस्तान उसके पहले अपने किताब नहीं था, पुस्तकवाला नहीं था। हिन्दुस्तान १० हजार साल से अपने किताब है, धर्म-ग्रन्थवाला है। वेद से लेकर धर्म-ग्रन्थ लिखे, लेकिन आम लोगों की भाषा संस्कृत नहीं रही, हिन्दी आयी। तो उनकी भाषा में धर्म-ग्रन्थ नहीं रहा। वह पेश किया। यह उनकी विशेषता है। इसे जरा इधर-उधर साफ करने की जरूरत है।

संग्रह की दृष्टि

उस तरफ महात्मा गांधी ने, जो कि तुलसीदास के परमभक्त थे, रामजी के भक्त थे, तुलसी-रामायण के भक्त थे, ध्यान दिलाया—ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी, ऐसी उक्तियों की तरफ ध्यान दिलाया। ऐसी बातें हम नहीं मानते हैं। हम भक्ति का भाग लेते हैं—इस तरह का भाग हम नहीं लेते हैं—ऐसा महात्मा गांधी ने कहा। यह ठीक है, लेकिन तुलसी-रामायण के बारे में सोचते हुए जरा संग्रह का फायदा तुलसीदास को देना चाहिए। आज न्याय-विधान का तत्त्व है

'मुजरिम' का न्याय का लाभ देना चाहिए। तुलसीदास महान थे, उन्होंने हमारे कल्याण के लिए लिखा है तो जिस पर हमारा आधार हो, उस विषय में हमें यह सोचना चाहिए कि तुलसीदास को संशय का लाभ मिले। यह वचन कौन कह रहा है? और बोल रहा है यह? मथरा के वचन रावण के वचन कुम्भकरण के वचन क्या रामायण बोले? ये तो जड़ समुद्र बोल रहा है। समुद्र ने रामजी को रास्ता नहीं दिया था, तो समुद्र के किनारे बैठकर रामजी ने तपस्या का उपवास किये फिर पर भी समुद्र ने रास्ता नहीं दिया तो रामजी ने धनुष उठाया। फिर समुद्र घबराया और घबराकर कहने लगा 'हम मूरख हैं हम नहीं समझते हैं, हमें ज्ञान नहीं है। इसलिए 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी' कहकर अपना गिनती समुद्र गँवार में कर रहा है। हम गँवार हैं नालायक हैं ताड़न के अधिकारी हैं हमें मार दिखाइए। यह तुलसीदासजी की उक्ति नहीं है वह जड़ जलधि की है। इसलिए तुलसीदास का न्याय का फायदा देना होगा। ऐसी अनेक उक्तियाँ होंगी उसमें संशय का फायदा हम देते हैं, तो तुलसीदास निर्दोष साबित होंगे। जिस पर भी एक बात मिलती है जिसे छोड़ना होगा।

जमाना किसका?

आप बड़ी शांति से सुन रहे हैं। हमारा दिल तुलसीदास की भक्ति से भरा है। हमने तुलसी रामायण का पाठ कई बार किया है। पाठ के लिए नहीं चिन्तन के लिए मनन के लिए किया है। पढ़ाया भी है। यह चीज हमारे दिल को छूती है और आपने यह मौका हमको दिया है, पवित्र पुण्य स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पण ... का ... ।

बड़ा उपकार मानते हैं।

किया। हम ... में यह

था उतना उ...।

समय अवसर

अवसर

से मिलता है। उस महान् राजा के राज्य में तुलसीदास हुए। लेकिन तुलसीदास ने उस वक्त की जनता का जो [illegible] किया है उसमें उन्होंने प्रयत्न [illegible] प्रकट किया है समाज गिर रहा है सब लोग कुण्ठित हो गये हैं लोगों का उत्थान नहीं हो रहा है, परस्पर मेल जोल सत्कार नष्ट हो गया हुआ लगता है। इस तरह तुलसीदास ने समाज की पतितावस्था का वर्णन किया है। क्या कारण है कि तुलसीदास का ऐसा [illegible] अकबर जैसे बड़े राजा की प्रजा का हो? इसलिए मैं कहता हूँ कि राजा-महाराजा रियासत या सरकार करेगी तो क्या करेगी? भौतिक इन्तजाम अच्छा करेगी लेकिन आध्यात्मिक विकास करेगी? नहीं कर सकता। मनुष्य का नेता नहीं बन सकता। जवाहरलालजी की सरकार है। मैं मानता हूँ कि अकबर की बराबरी में जवाहरलालजी की गिनती आगे की दुनिया करेगी। वे महान् राज्यकर्ता उत्तम विचारक हैं। प्रजा पालन के बारे में जिनके हृदय में सौजन्य है ऐसे महान् के हाथ में ३८ करोड़ लोगों की बागडोर है। कितना उत्थान हुआ है देश का? रामजी का राज्य आदर्श माना जाता है। उसमें प्रजा का हालत क्या था। सीताजी रावण के घर में रहीं, तब एक प्रसंग हुआ है जिस पर भी रामजी की प्रजा में सीताजी के बारे में उनके चारित्र्य पर शंका उठानेवाली चर्चा होती थी। रामजी की प्रजा में सीताजी के चारित्र्य पर शंका बहुत अजीब मालूम लगता है। सीता याने परम आदर्श पतिव्रता और पवित्रता थी। उससे बढ़कर आदर्श नहीं हो सकता। लेकिन उस पर शंका करनेवाले रामजी की प्रजा में थे। इसके माने क्या है? आपको समझने की जरूरत है कि केवल राजा या राजसत्ता जनता का उत्थान नहीं कर सकता है। राजसत्ता क्रान्ति कर सकती तो गौतम बुद्ध के हाथ में राज्य था उसने क्या छोड़ा? क्या वह बेवकूफ था? आज हम चाहते हैं कि हम इलेक्ट हो जाएँ, ऐसा यह सोचता है। लेकिन इलेक्ट होकर क्या करते हैं? वे क्या बन जाते हैं। एक मशीन के पुर्जे बन जाते हैं। आखिर राजनीति में पतन हो और जनता के उत्थान के लिए क्या किया, तो कहते हैं, इधर

इमें बनाया, उधर पुल बनाया। लेकिन लोक-हृदय को स्फूर्ति देने के लिए, लोगों की शुद्धि करने के लिए, उनके उत्थान के लिए क्या काम किया? क्या लोगों में परस्पर सहयोग हुआ? यह सच है कि थोड़ा-सा कुछ लोगों का आर्थिक सुधार हुआ, लेकिन नैतिक उत्थान नहीं हुआ। राजसत्ता के द्वारा नैतिक उत्थान नामुमकिन है। अकबर के राज्य में सब अच्छी तरह से इंतजाम होने के बावजूद तुलसीदासजी ने समाज-अवस्था का जो वर्णन किया है, प्रजा का जो वर्णन किया है वह बताता है कि समाज गिरा हुआ था। उस पर इसका सबक लेना चाहिए। तुलसीदासजी समाज के लिए मार्गदर्शक थे, अकबर नहीं हो सकता था। इसलिए अकबर के जमाने में तुलसीदास हो गये यह गलत लिखा है। बावजूद इसके कि अकबर महान् था—मेरा सलाम है अकबर की स्मृति को—लेकिन जमाना अकबर का नहीं था, तुलसीदास का था। आज के इतिहासकार ऐसा नहीं लिखते हैं। सर्वदा सदा में कोई महान् थे विद्यारण्य और उधर सामन्त प्रकार से काम करते थे। लेकिन आज के इतिहासकार राजाओं के नाम लिखते हैं और लिखते हैं कि फलाने राजा हुए, फलाने राजा हुए। यहाँ तक है कि पण्डित नेहरू ने दुनिया का इतिहास लिखा है—बहुत अच्छी तरह से लिखा है—लेकिन उसमें बाबर के नाम पर पाँच-छह पन्ने हैं और तुलसीदास के बारे में दो चार शब्दों में ही लिखा है। मैं कोई टीका नहीं कर रहा हूँ। यह एक वृत्ति है। इधर-उधर से हम देखते हैं। दीखता है कि अकबर का जमाना था, लेकिन अकबर का असर समाज पर था? समाज पर असर तुलसीदास का था। ऐसे कितने ही राजा होंगे, प्रजा उनको भूल गयी है। लेकिन आज भी कबीर, नानक, नामदेव का असर लोगों के दिल पर है। पंजाब में मैं गया था तो नानक का नाम सुनता था। कश्मीर में गया था तो वहाँ एक महान् आत्मज्ञानी का नाम मैंने सुना। कश्मीर का वह लल्लेश्वरी नाम मुझे पहले मालूम नहीं था। शैव सम्प्रदाय की एक योगिनी हो गयी। वह नग्न रहती थी। कश्मीर में नग्न रहना मामूली बात नहीं है। यह

सो छह-सात महान अर्थ रखता है। उस स्त्री का नाम था लल्ला। आज भी कश्मीर के हिन्दू और मुसलमान जो हिन्दू धर्म से ही मुसलमान बने हैं वे लल्ला के गाने गाते हैं। वे कहते हैं कि कश्मीर को दो ही नाम मालूम हैं—एक अल्ला और दूसरा लल्ला। दूसरे राजा का नाम मालूम नहीं। लेकिन इन दिनों इतिहास में राजा के नाम रटते हैं। रामायण का मालूम था कि हम जिनके यहां रहनेवाले हैं याने हमारे नाम वहां रहनेवाले हैं। इसलिए इतिहास में बच्चों से रटवाते हैं।

दिल्ली से ४० मील दूर एक गांव को बसाने का काम मैं करता था। उस वक्त एक मस्जिद में खड़ा होकर मैं बोल रहा था। वहां ही अकबर बादशाह की मिसाल दी। मुसलमानों की सभा थी। मुझे महसूस लगा कि जरा पूछूं तो कि अकबर बादशाह को जानते हो? सभा में आये हुए लोगों ने बताया कि अकबर राजा कौन था उन्हें मालूम नहीं। बावजूद इसके कि बादशाह में अकबर और दुनिया में उसका यहां तक आदर है। लेकिन वहां के मुसलमान नहीं जानते थे कि अकबर राजा कौन था। वे कबीर को जानते थे। मैंने पूछा कि क्या अकबर का नाम नहीं सुना? तो बोले सुना है अल्ला हो अकबर—अल्ला हो अकबर। अकबर बादशाह खतम। अरबी भाषा में अकबर का अर्थ होता है सबसे बड़ा। उस शब्द से बड़े अल्ला को वे जानते थे लेकिन अकबर बादशाह को वे लोग नहीं जानते थे। हिन्दुस्तान में हिन्दू लोग एक ही राजा को जानते हैं—राजा राम। लोगों को सन्तों की नामावली मालूम है। पंजाब में [illegible] माह मैं घूमा। वहां लोगों के मुंह पर एक ही नाम सुना—गुरु नानक का। मीरा, तुलसीदास, महावीर, महात्मा बुद्ध, ज्ञानदेव, नामदेव, पुरन्दर, शंकर, रामानुज—यही है पावन नामावली—यही तारक है। ऐसे महान् का नाम लेने के लिए आपने मुझे बुलाया इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

इन्दौर —गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती के अवसर पर

३० ७ ६०

: ५ :

गलत मूल्यांकन

दोयम दर्जे की सेवाएँ

हम मूल्य-परिवर्तन चाहते हैं। मूल्य-परिवर्तन की न सोचकर आज समाज में जो मूल्य कायम माने गये हैं, उनके आधार पर जो सेवा होती है, वह समाज की सेवा तो जरूर है, लेकिन हम उसे गौण मानते हैं। वैसी सेवाओं से समाज चलता है, वैसी सेवाएँ न हों तो समाज का विच्छेद हो जायगा। लेकिन वैसी सेवाओं को हम अपने विचार के लिहाज से दोयम दर्जे की मानते हैं।

हम मूल्य बदलना चाहते हैं।

हम कुछ मूल्यों को बदलना चाहते हैं। मिसाल के तौर पर, चोरी नहीं होनी चाहिए। क्या हम इस मूल्य को नहीं मानते? यह मूल्य हमको मान्य है, लेकिन चोर को दण्ड कैसे दिया जाय? दण्ड से चोर का सुधार होना चाहिए न कि उसे सजा मिले, यह हम बदलना चाहेंगे। लेकिन विशेष परिस्थिति में चोरी होगी, ऐसा हम नहीं कहेंगे। हम कहेंगे कि चोरी गलत है।

चोरी गलत, संग्रह भी गलत

आज हम एक आयुर्वेद के बगीचे में गये थे। वहाँ के पौधे वैद्यजी ने मुझे दिखाये। एक-एक पौधा बड़ी वात्सल्यवृत्ति से लगाया गया था। उनकी बात सुनकर और पौधा देखकर आनन्द होता था। उनमें एक पौधा विशेष किस्म का था। वह पौधा दिखाकर उन्होंने कहा कि उसके अपहरण का डर रहता है। उन्होंने चोरी शब्द न इस्तेमाल करके अपहरण शब्द का

प्रयोग किया। कम्युनिस्टों ने भी एक शब्द बनाया है Expropriation of the expropriator यानी अपहरणकर्ता का अपहरण करना वाजिब है, ऐसा उनका कहना है। उनके आगे एक कदम भी हम नहीं जायेंगे। लेकिन हर बात में वाजिब बनें होंगे। हम चोरी को पाप मानते हैं। उसके साथ संग्रह को भी पाप मानते हैं। जैन लोगों ने हमारे शास्त्रों में भी कहा है कि संग्रह नहीं करना चाहिए। हम जो योजना करते हैं उसमें भी संग्रह का स्थान है। पर जिस प्रकार चोरी को गुनाह मानकर उसके लिए पुलिस कानून आदि बना वैसा संग्रह की योजना का क्या? वैसा हमने संग्रह करनेवालों के लिए कोई योजना बनायी है क्या? संग्रह के लिए भी इस प्रकार योजना बनायी जा सकती है।

मनुस्मृति में एक श्लोक है। उसमें कहा गया है कि इतना संग्रह न किया जाय। एक कुल से अधिक संग्रह करने का गृहस्थ को अधिकार नहीं है। संग्रह का अधिकार केवल गृहस्थ को ही है, ब्रह्मचारी और संन्यासी को संग्रह का अधिकार ही नहीं है। लेकिन गृहस्थ के संग्रह पर भी मर्यादा लगायी गयी है। उसका एक अर्थ जो लगाया जाता है उसके मुताबिक एक आदमी अपने लिए १२ दिन तक खाने से ज्यादा अनाज का संग्रह नहीं कर सकता। उसके अलग-अलग अर्थ भी किये जाते हैं। लेकिन उनमें सबसे निकट जो अर्थ है उसके मुताबिक एक आदमी अपने लिए ३ वर्ष तक पर्याप्त हो, उससे ज्यादा का संग्रह नहीं कर सकता। अब यह टेक्निकल है और उसका अर्थ निकालना सहज नहीं दिखता। लेकिन सबसे जो 'लिबरल' अर्थ है वह लिया जाय तो उसके मुताबिक भी ३ साल से ज्यादा का संग्रह नहीं किया जा सकता। जैसे मान घर में ५ आदमी हैं और हर आदमी के लिए रोजाना २ रुपये की आवश्यकता है, तो रोज के १० रुपये हुए। महीने के ३००) साल के ३६००) और ३ वर्ष के १०८००) हुए। इससे ज्यादा संग्रह नहीं कर सकते। पर आज भी कानून [illegible]

कैसा विलक्षण लगेगा ? संग्रह के बारे में जिनका सबसे ज्यादा तीव्र मत है और जो लेवलिंग करने के सबसे ज्यादा प्रेमी हैं, वे कम्युनिस्ट भी ता यह नहीं मानेंगे। उनसे पूछा जाय तो वे भी इससे ज्यादा ही मर्यादा कहेंगे। पर मनु ने ऐसा कहा। अगर संतो ने या ऋषि-मुनियों ने यह कहा होता तो उनको मना करना या ऋषियों का उपदेश मान लेना और जनता का मानते नहीं तो मर्जी। लेकिन मनु कोई मन नहीं था। मनु तो उस जमाने का Law Giver था। अर्थात् वह सामाजिक कानून था। मतलब यह कि उससे ज्यादा संग्रह हो तो सरकार उसको जब्त कर सकती है। या फिर कभी-कभी डाकू भी लूट लेते हैं। मान लीजिए, किसीके पास ज्यादा संग्रह है और डाकू ने उसे लूट लिया और गरीबों में बाँट दिया।

ऐसे डाकू होते हैं। अभी चम्बल क्षेत्र से मैं आया हूँ। वहाँ जो डाकू हुए उनमें ऐसे भी हुए जिन्होंने गरीबों को नहीं लूटा स्त्रियों पर बलात्कार नहीं किया धनवानों से लूटकर गरीबों में बाँटा या मन्दिर बनवाया, धर्मशाला बनवायी। एक गाँव में एक भाई बताते थे कि देखो, यह मन्दिर मानसिंह डाकू ने बनवाया था। ऐसे लोगों की भी जनता में एक इज्जत होती है क्योंकि जनता के दिल में एक हद से ज्यादा संग्रह के विरुद्ध एक अभिप्राय होता है लेकिन वह अन्दर-अन्दर होता है। हम चाहते हैं कि एक ऐसा जागरूक लोकमत होना चाहिए कि इससे ज्यादा संग्रह पाप है। आजकल सीलिंग (Ceiling) की बात चलती है। उसका अर्थ यह है कि एक नया मूल्य समाज के सामने आया है।

भूदान से नये मूल्यों की स्थापना

मैंने कई बार कहा है कि भूदान ने एक नये मूल्य की स्थापना की है। आज से ८-१ साल पहले किसी १०० एकड़ के मालिक से पूछते कि आपके पास कितनी जमीन है, तो वह १०० की जगह ५०० एकड़ जमीन बताता और उसमें अपनी इज्जत समझता। लेकिन आज स्थिति यह है कि १०० एकड़ का मालिक २५ एकड़ ही बतायगा। ज्यादा जमीन

रखना वह गुनाह मानने लगा है। इस पर से साफ है कि मूल्य बदल गया है। अब ज्यादा जमीन रखना भूषण नहीं माना जाता। उसमें credit नहीं, discredit ही है ऐसा माना जाता है। ऐसा एक मूल्य परिवर्तन समाज में हुआ है। चोरी नहीं करनी चाहिए यह एकांगी मूल्य आज तक चलता था। लेकिन अब ऐसे मूल्य के दोनों पहलू सामने आने चाहिए।

एकांगी मूल्य नहीं, पूर्ण नीति

दूसरी मिसाल। पत्नी पति के प्रति वफादार रहे यह एक मूल्य पहले से समाज में मान्य है। एक ही पति होना चाहिए यह माना गया है। द्रौपदी के पाँच पति थे इस एक उदाहरण को छोड़कर एक ही पति होना चाहिए। दो पति नहीं हो सकते यह मान्यता रही है। लेकिन पति को दो पत्नियाँ हो सकती हैं। हाँ रामजी को एक ही पत्नी थी और यह अच्छी बात मानी गयी। लेकिन दशरथ को तीन पत्नियाँ थीं। यह बहुत बड़ा दोष नहीं मानी गयी। कहनेवाले अवश्य कहते हैं कि दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं इसी कारण यह सब हुआ ऐसा रामायण में दिखाया गया है। लेकिन आज बहुपत्नीत्व को ठीक नहीं मानते। सरकारी नौकरों के लिए एक ही पत्नी होना जरूरी माना गया है। मुसलमानों के लिए अलबत्ता ऐसा कानून है कि एक आदमी के चार से ज्यादा पत्नियाँ नहीं होनी चाहिए। लेकिन एक पत्नी के चार से ज्यादा पति नहीं होने चाहिए ऐसा नहीं कहा जाता। एक ही पति होना चाहिए यह मूल्य का एक पहलू है। उसका दूसरा पहलू अभी लागू नहीं हुआ है। समाज ने उसके बारे में अभी तक सोचा नहीं है। इसके मानी हैं कि पुराने मूल्य, जो एकांगी मूल्य हैं हम उनका दूसरा पहलू सामने लाकर Whole ethic समाज में लाना है। यह हमारे मूल्य-परिवर्तन का एक अंश है।

किसी भी स्थिति में मनुष्य हनन नहीं किया जा सकता

दूसरा काम हम यह करना है कि कुछ अधर्म, दुर्गुण या पापों को हमने समाज रक्षा के नाम से समाज मान्य किया है उनको हटाना है। यह

हमारे देश में और यूरोप में भी है। उसे कहते हैं War Babies यानी युद्ध सन्तान। युद्ध के समय सोल्जरों को अपने परिवारों से अलग, दूर रहना पड़ता है। वह राष्ट्र के रक्षण के लिए सेवा करता है। उसको जो शराब दी जाती है उसी प्रकार लड़कियाँ भी व्यभिचार के लिए दी जाती है। उन लड़कियों की सन्तान होती है। समाज ऐसी सन्तानों को दया की दृष्टि से देखता है। तो उसे तो राष्ट्र-संरक्षण के नाम से हमने इसको मान्य रखा। हिंसा भी धर्म की दृष्टि से हिंसा पाप है फिर वह धर्म ईसा का हो, मूसा का हो, बौद्ध हो, जैन हो या हिन्दू हो। हिंसा को पाप माना गया है लेकिन राष्ट्र-बचाव के लिए हिंसा कर सकते हैं, ऐसा माना गया। उसे क्षात्रधर्म माना गया और उसका गौरव किया गया। आज भी कोई क्षात्रधर्म को अमान्य कहने को तैयार नहीं है। जहाँ राष्ट्र के बचाव की बात आयी वहाँ हिंसा को धर्म माना। यानी धर्म की दृष्टि से जो अधर्म है उसको भी राष्ट्र रक्षण के लिए धर्म माना। अब यह बदलना चाहिए। हम इस मूल्य को स्थापित करना चाहते हैं कि किसी भी स्थिति में मनुष्य-हनन नहीं किया जा सकता। या तो यह कोई नयी बात नहीं है। यह तो बुद्ध ने भी कहा है और ईसा ने भी कहा है। हम कोई नयी बात नहीं कहते हैं। लेकिन इस मूल्य को हम समाज-मान्य कराना चाहते हैं।

समाज रक्षा के लिए विपरीत मूल्य

एक तीसरी मिसाल लीजिये। पुलिस Approver बनाती है। पचास आदमियों ने मिलकर डाका डाला, खून किया। उनमें से किसी एक को पुलिस Approver बनाती है। उसमें पुलिस कहता है कि अगर तुम इनका भण्डाफोड़ कराओ तो तुमको माफी मिलेगा। जो आदमी भंडाफोड़ करता है उसको माफी मिलती है और दूसरों को गुनहगार मानकर सजा दी जाती है। अब बाकी लोग और यह Approver दोनों समाज के गुनहगार थे, डाका और खून में शरीक थे लेकिन एक का सब गुनाह माफ और दूसरे जो उतने ही गुनहगार थे उनको सजा!

हमारे देश में और यूरोप में भी है। एक शब्द है War Babies यानी युद्ध-सन्तान। युद्ध के समय सिपाहियों को अपने परिवारों से अलग, वर्षों तक दूर रहना पड़ता है। वह राष्ट्र के रक्षण के लिए सेवा करता है। उसको जैसे शराब दी जाती है उसी प्रकार लड़कियाँ भी व्यभिचार के लिए दी जाती है। उन लड़कियों की सन्तान होती है। समाज ऐसी सन्तानों को दया की दृष्टि से देखता है। तो एक तो राष्ट्र-संरक्षण के नाम से हमने हत्या को मान्य रखा। किसी भी धर्म की दृष्टि से हिंसा पाप है फिर वह धर्म इस्लाम हो, ईसा का हो, बौद्ध हो, जैन हो या हिन्दू हो। हिंसा को पाप माना गया है, लेकिन राष्ट्र-बचाव के लिए हिंसा कर सकते हैं, ऐसा माना गया। उसे क्षात्रधर्म माना गया और उसका गौरव किया गया। आज भी कोई क्षात्रधर्म को अमान्य करने को तैयार नहीं है। जहाँ राष्ट्र के बचाव की बात आयी वहाँ हिंसा को धर्म माना। यानी धर्म की दृष्टि से जो अधर्म है उसको भी राष्ट्र रक्षण के लिए धर्म माना। अब यह मानना चाहिए। हम इस मूल्य को स्थापित करना चाहते हैं कि किसी भी स्थिति में मनुष्य-हनन नहीं किया जा सकता। यह तो यह कोई नयी बात नहीं है। यह तो बुद्ध ने भी कहा है और ईसा ने भी कहा है। हम कोई नयी बात नहीं कहते हैं। लेकिन इस मूल्य को हम समाज-मान्य कराना चाहते हैं।

समाज रक्षा के लिए विपरीत मूल्य

एक तीसरा मिसाल लीजिये। पुलिस Approver बनाती है। पचास आदमियों ने मिलकर डाका डाला, खून किया। उनमें से किसी एक को पुलिस Approver बनाती है। उससे पुलिस कहती है कि अगर तुम इनका भण्डाफोड़ करोगे तो तुमको माफी मिलेगी। जो आदमी भण्डाफोड़ करता है उसको माफी मिलती है और दूसरों को गुनहगार मानकर सजा दी जाती है। सब बाकी लोग और यह Approver इतना समाज के गुनहगार थे, डाका और खून में शरीक थे लेकिन एक का सब गुनाह माफ और दूसरे जो उनके ...

उन्होंने ग्राम रक्षक दल बनाया और उनके हाथ में राइफल दी। अब इनमें से किसी को गुस्सा आ गया तो? तो गोली चलेगी और कत्ल हो जायगा। इसके अलावा उन्होंने Informer को राइफल दी। Informer उनको डाकुओं की जानकारी देता है। जानकारी देता है तो उसे डर भी रहता है, इसलिए उसको भी राइफल दे दी। तो चार जमातें राइफलवाली हुईं—पुलिस, डाकू, मुखबिर और ग्राम रक्षक दल। बाकी लोग बेचारे तंग आ गये। इन चारों में से किसी को भी गुस्सा आ गया कि उन बेचारों की मुसीबत। मैंने कहा कि इसमें डर ही डर भरा है, निर्भयता नहीं आती। यह कोई अच्छा लक्षण नहीं है। उस सम्बन्ध में इनका कहना था यह है कि आप ऐसा करते हैं, तो इससे पुलिस का Moral टूटता है। राष्ट्रपति ने तो मेरे काम के बारे में अभिनन्दन किया। पर दूसरों ने कहा कि बाबा का काम यों तो अच्छा है, लेकिन उससे पुलिस का Moral टूटता है। और जो राइफल की महिमा है वह भी टूटती है। और समाज में आज जो Established Values हैं, उनको धक्का पहुंचता है। हम इन गलत मूल्यों को, अधर्मों को तोड़ना चाहते हैं। यह हमारे मूल्य-परिवर्तन का दूसरा प्रकार है।

गुणों का बँटवारा भयंकर

तीसरे आज व्यक्ति-धर्म और समाज धर्म में फरक किया जाता है। व्यक्ति के लिए जो गुण ठीक वह समाज के लिए अठीक माना जाता है। यह जो गुणों का बटवारा किया जाता है, वह भयंकर है।

सत्य अपरिवर्तनीय मूल्य

फिर उसमें भी कुछ ग्रेडेशन्स किये जाते हैं। एक अणुव्रत आन्दोलन चल रहा है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह—ये जो पाँच व्रत हैं उनका एक हद तक हम पालन करेंगे। ऐसी प्रतिज्ञा की गयी, तो अणुव्रत का पालन हुआ। खाने की चीजों में मिलावट नहीं करेंगे या दवा में मिलावट नहीं करेंगे ऐसा अणुव्रत लिया। याने खाने की चीज में या दवा में मिलावट नहीं करेंगे लेकिन और चीजों में मिलावट करेंगे।

माना कि आत्मा ने अणुव्रत द्वारा एक मर्यादा मान ली तो वह क्रम-क्रम से प्रच्छाद की तरफ आगे बढ़ सकता है। और व्रतों के बारे में तो यह समझ में आ सकता है लेकिन सत्य के बारे में कहा जाय कि मैं सत्य का अणुव्रत पालन करूँगा—सत्य एक हद तक बोलूँगा—तो वह समझ में नहीं आता। सत्य तो आपकी बुनियाद है। यह आपका Right Angle है। उसमें भी थोड़ा फरक मान लिया जाय ८० अंश का कोण हो या ८५° अंश का कोण हो तो भी उसको Right Angle मानेंगे ऐसा कहा, तो सारा मूल-का-मूल व्यवहार टूट जायगा। हाँ गलती से असत्य का व्यवहार हो तो वह माफ किया जा सकता है। बाकी के नियमों में न्यूनाधिक पालन हो सकता है लेकिन जहाँ तक सत्य का ताल्लुक है उसको Absolute Value मानकर ही उसका आचरण करना चाहिए। उसके बारे में निरपेक्ष नीति मानकर ही चलना होगा। सत्य का थोड़ा पालन और थोड़ा नहीं यह कोई माना नहीं रखता। किसी मनुष्य के बारे में कहा जाय कि वह आधा जिन्दा है और आधा मरा हुआ है, तो क्या समझा जाय? या तो कहिये कि वह मरा हुआ है या फिर जिन्दा है। आधा मरा हुआ या आधा जिन्दा के कोई मानी ही नहीं है। सत्य पूर्ण वस्तु है। लम्बा छोटा है इसलिए वह आठ आना या बारह आना सत्य बोलेगा ऐसा नहीं है वह सत्य बोलेगा यानी पूर्ण सत्य बोलेगा। सत्य पूर्ण वस्तु है अपरिवर्तनीय मूल्य है उसकी स्थापना हमें करना है। वह आज स्थापित नहीं है। ज्ञान के अभाव में कुछ ऐसी बातें होती हैं, जो कि सत्य नहीं हैं। पर वह असत्य भी नहीं, जैसे पुराने Astronomers अपने बच्चों से कहते थे कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य उसके इर्द गिर्द चक्कर काटता है। हकीकत में यह बात गलत थी लेकिन वह नैतिक असत्य नहीं है। मैं एक चीज नहीं जानता हूँ और इसके कारण कुछ गलत या मिथ्या बोलता हूँ तो वह नैतिक असत्य नहीं है। वह ज्ञान के अभाव में है। जैसे-जैसे विज्ञान फैलेगा वैसे वैसे ज्ञान बढ़ेगा और सत्य धीरे धीरे प्रकाशित होगा। जानकारी के

समाज में कही गयी गलत बात नैतिक असत्य नहीं है। लेकिन जो कहता है कि सत्य का एक हद तक पालन करूँगा, वह गलत है नैतिक असत्य है। सत्य हमेशा पूर्ण होता है और उसका एक गौण और एक प्रधान रूप नहीं होता। उसका तो एक ही रूप होता है।

असत्य एक बुनियादी पाप

हमने कुछ घटनाओं को पाप माना और उन पापों को असत्य से बड़ा पाप माना ज्यादा महत्त्व दिया है। जब किसीने व्यभिचार किया। वह उसको छिपाने की कोशिश करता है क्योंकि हमने व्यभिचार को छिपाने के पाप से बहुत बड़ा पाप माना है। इसलिए वह उसे छिपाता है। लेकिन मानो, किसीने व्यभिचार किया और छिपाया नहीं और कह दिया कि मुझसे ऐसा ऐसा हो गया तो इससे उस पाप की मात्रा कुछ कम हो गयी। लेकिन समाज ने व्यभिचार को असत्य से भी बड़ा मान लिया है इसलिए वह उसको बिलकुल माफ नहीं करता। लेकिन अगर वह छिपा सकता तो उसकी इज्जत को उतनी हानि न पहुँचती। तो, हमें यह स्थापित करना है कि असत्य एक बुनियादी पाप है। व्यभिचार को छिपाना व्यभिचार से बढ़कर पाप है ऐसा होना चाहिए। लेकिन हमने मूल्यों में गलत दर्जे बनाये हैं और इनमें दूसरे मूल्यों को सत्य से बढ़कर ज्यादा महत्त्व दे दिया है। उसके कारण पाप छिपते हैं। मुझे कोई बीमारी हुई तो क्या मैं उसे छिपाऊँगा? पेट दुखता है, क्योंकि ज्यादा खा लिया था। उसको जाहिर कर देने के बजाय मैं उसको छिपाता हूँ तो नुकसान उठाता हूँ। सबको भले न कहूँ पर डॉक्टर से तो कहना ही होगा। कहूँगा तो ही इलाज होगा। यह जाहिर बात है कि बीमारी निसर्ग के कुछ नियमों को तोड़ने से ही आयी होगी। मनुष्य अपने रोग को जाहिर कर देता है तो समाज उससे घृणा नहीं करता दया की नजर से देखता है और उसका इलाज भी होता है। समाज की हमदर्दी मिलती है [illegible] रोग प्रकट किया जाता है। लेकिन जिन रोगों के बारे में घृणा होती है उनको छिपाने की कोशिश की जाती है जैसे कि (leprosy)—

कुछ रोग। कई लोग उनको प्रारम्भ में छिपाते हैं क्योंकि समाज में उनके प्रति घृणा है। समाज उनका बहिष्कार करेगा इसका उन्हें डर रहता है। लेकिन जब वह रोग बहुत बढ़ जाता है तब जाकर प्रकट करते हैं। प्रारम्भ में बता दिया जाता, तो उसका फौरन इलाज हो सकता था और वह शायद अच्छा भी हो सकता था। साधारण रोगों के बारे में घृणा नहीं होती इसलिए उनको प्रकट किया जाता है। उसी प्रकार कुछ पापों के बारे में भी समाज में बहुत घृणा होती है और समाज उनको मान्य नहीं करता, इसलिए उनको छिपाने की वृत्ति है। इस प्रकार असत्य का आचरण होता है। आज समाज में पापों का जो अंकन हुआ है वह गलत हुआ है। अगर यह स्थापित हो जाय कि सबके सब दुर्गुण क्षम्य हैं तो समाज में पापों को छिपाने की प्रवृत्ति घटेगी और जैसे रोग प्रकट किये जाते हैं वैसे पाप भी जाहिर किये जायँगे और उनका इलाज भी हो सकेगा। तो, हमें इस मामले में भी मूल्य-परिवर्तन करना है।

इन्दौर —प्रकाश कार्यकर्ता शिविर में
१-८-'६०

: ६ :

शब्दों का बल

अन्तरात्मा बहिरात्मा में शब्दरूप, ध्वनिरूप होती है

जब कोई कवि जन-हृदय के साथ घुल मिल जाता है तो वह लोगों के हृदय में छिपी हुई भावना को बाहर लाता है। जो भावनाएँ लोगों के मन में गुम हैं, सुप्त हैं, छिपी हैं, उनको बाहर लाने की कोशिश करने पर उन गानों में लोगों को अपने अन्तर्भावों का दर्शन होता है, आत्म-दर्शन का आनन्द होता है। मनुष्य की आत्मा भावगत होती है। गीता में कहा जाता है आत्मभावस्थ। भगवान् भावस्थ हैं, जो मनुष्य का अन्तर्भाव है जिसके अन्दर आत्मा ज्योतिरूप में जल रही है, प्रकाश दे रही है। मनुष्य जो मामूली चीजें बोलता है, हंसी विनोद, रोजमर्रा की तरह-तरह की बातें, झगड़े, गालियाँ, विनोद, आमोद-प्रमोद करता है, आनन्द और भोग विलास की बातें करता है, उनमें उसकी आत्मा प्रकट नहीं होती। मनुष्य का ऊपर का हिस्सा प्रतिबिम्बित होता है। लेकिन जहाँ अन्तर्भाव वाणी में प्रकट हुआ, जैसे कबीर, तुलसीदास, ग़ालिब, टैगोर, इत्यादि की वाणी में हुआ, उस तरह लोक हृदय की आत्म-ध्वनि बाहर लाते हैं, तो उनमें लोगों को आत्म-साक्षात्कार का अनुभव होता है। आत्म भान का दर्शन होता है। जो भाव उनके हृदय में थे लेकिन व्यक्त नहीं कर सकते थे वे व्यक्त हो गये। अन्तरात्मा बहिरात्मा में शब्दरूप लेकर ध्वनिरूप में सामने खड़ी हो गयी।

हम पदल-यात्रा करते ही रहते हैं। तब हमें कभी-कभी तुकारामजी के गीत याद आते हैं। ऊपर घने बादल हों, मूसलाधार घोर वर्षा हो रही हो, ऐसे समय पर हमें तुकारामजी के गीतों की याद आती है।

मन्दी गत न पड, ऐ मसाफिर मन्दी गत न पड और सामने वाले चाने भयानक बादल दीखते हैं जरूर लेकिन 'काले बादल हिम्मत से न घड'—ये दो शब्द सुनकर कितना उत्साह भर आता है। इसकी वजह यह है कि वह शब्द अन्तरात्मा को बाह्य रूप देता है और तब वह लोकमानस में प्रवेश करता है।

भूदान अन्तरात्मा में भरी करुणा बाहर लाता है

मैं कहना यह चाहता हूँ कि भूदान आन्दोलन में जो अन्त तत्त्व है जिसे एक भिक्षमगा कार्यक्रम समझकर पहले से आज तक चन्द लोग वर्णन करने में धन्यता महसूस करते हैं वह अन्त तत्त्व और उसका कार्यक्रम प्रतिभावान् कवियों को उत्साह देता है। कई कवियों को सर्वोदय के कार्यक्रम ने इस तरह उत्साहित किया है। भारत में ऐसी रुचि दूसरे किसी कार्यक्रम के बारे में लोगों को हुई हो ऐसा मैंने नहीं देखा। नौ साल से मैं घूम रहा हूँ लेकिन ऐसा अन्दाजा मुझे नहीं लगा। हिन्दुस्तान के लोग इसे भिक्षमगा कार्यक्रम नहीं समझते हैं। वे समझते हैं कि हमारी अन्तरात्मा में जो करुणा भरी है उसे बाहर लाने का यह कार्यक्रम है।

जिस भूमि से शब्द निकला उस भूमि से हृदय जुड़ा रहे

जो चीज जिस भूमि से निकली है उसे समझने के लिए उस भूमि से हृदय जुड़ा रहना चाहिए। वह शब्द किस हवा से, किस भूमि से निकला है उसे समझना चाहिए। मुझे कई भाषाओं का अभ्यास है हिन्दुस्तान की और बाहर की भाषाओं का भी। लेकिन दस हजार साल पहले की भाषाओं में सिवा संस्कृत के और कोई दूसरी भाषा हो, तो मैं नहीं जानता। इतनी पुरानी दूसरी कोई भाषा नहीं है। संस्कृत का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। उसके पहले श्लोक में जो मन्त्र है उसमें जो शब्द है वे जैसे के तैसे आज भी हिन्दी मराठी बंगला और गुजराती में इस्तेमाल किये जाते हैं। पहला ही मन्त्र है—'अग्निमीळे ... होतारं रत्नधातमम्।' उसमें पहला

अग्नि। यह इन सब भाषाओं में चलता है। अग्नि पुरोहित शब्द, वन ये शब्द ज्यों के त्यों इन भाषाओं में चलते हैं। ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें ग्रीक और लैटिन के शब्द ज्यों के त्यों इस्तेमाल किये जाते हों। लेकिन हमारी भाषा में होते हैं। करीब पचास प्रतिशत शब्द वैसे के वैसे चलते हैं।

भारतीय विचार क्रान्ति की प्रक्रिया

हमारा और बाद कारण यही रही है कि हिन्दुस्तान में जो विचार क्रान्तियाँ हुई उनकी अपनी एक स्वतन्त्र प्रक्रिया थी। वह यह कि पुराना शब्द तो कायम रहे उसमें अर्थ नये भर दें यानी नये-नये अर्थों की उस पर कलम चढ़ाई जाय। पुराने शब्द की ताकत और नये अर्थ की मधुरता, दोनों मिलकर एक नया ही विचार हिन्दुस्तान को मिलता गया। शब्द पुराने कायम रहते गये और नये-नये अर्थों की प्रेरणा जन-समाज को मिलती गयी। यह अहिंसक प्रक्रिया थी और इसी प्रक्रिया से हिन्दुस्तान आगे बढ़ता रहा। यह बहुत समझने की बात है कि हिन्दुस्तान की भूमि में क्या चीज पड़ी है, जिसके आधार से गांधीजी जैसे पुरुष पैदा हुए और इसके आगे भी अनेक पैदा होंगे। यहाँ की जमीन में जो ताकत पड़ी है उसे समझने की जरूरत है।

दुनिया के कुल देशों के लोगों का अपना-अपना अभिमान होता है। लेकिन हिन्दुस्तान के लोग भारत के लिए क्या बोलते हैं यह ध्यान देने लायक बात है। 'दुर्लभं भारते जन्म'। वैसे इंग्लैण्ड, जापान और रूस में भी लोग बोलेंगे कि इंग्लैण्ड जापान रूस में जन्म लेना बड़ी धन्यता की बात है। लेकिन हिन्दुस्तान के लोग आगे क्या बोलते हैं? 'मानुषी तत्र दुर्लभम्' यानी मनुष्य का जन्म लेना बहुत ही दुर्लभ बात है। मतलब यह कि हिन्दुस्तान में कीड़े-मकोड़े का जन्म मिला तो भी हम धन्य हैं और मनुष्य का जन्म मिला तो ज्यादा धन्य हैं। इसके माने यह हैं कि इस भूमि को असंख्य सत्पुरुषों की चरण-रज का स्पर्श हुआ है। उससे यानी उस चरण-स्पर्श से यहाँ के जीव-जन्तु भी धन्य हैं।

यहाँ विचार की एक प्रक्रिया था। इसे जो नहीं समझते वे यहाँ म

जिनके हुए शब्द का अर्थ भी नहीं समझते और उसकी गहराई भी समझते नहीं हैं। इस तरह यहाँ के शब्दों का खण्डन करते हैं।

रण छोड़कर क्यों भाग रहे हो?

एक भाई बोल उठे कि हम संन्यास वगैरह कुछ नहीं मानते हैं। मैंने कहा : 'फिर क्या मानते हो? भोग मानते हो? हिन्दुस्तान का सबसे श्रेष्ठ विचार संन्यास है, उसका गौरव शास्त्र और संत गा रहे हैं। ऐसा कामधा शब्द है। लेकिन क्योंकि कुछ लोगों ने उसका बुरा उपयोग किया, इसलिए आप उसे बुरे लोगों के हाथ में सौंप देंगे? इसका मतलब यह है कि आप रण छोड़कर भाग गये और शस्त्र भी छोड़कर भाग गये। यह शस्त्र आपका है। संन्यास उनका शब्द नहीं है जिन्होंने इसका गलत उपयोग किया और संन्यास का जामा पहनकर दुनिया को ठगा। आपने यह शब्द उनके हाथ में देकर भागना शुरू किया तो संन्यास शब्द ही कलंकित किया। अर्थात् आपका जो सबसे मजबूत शस्त्र था, उसको छोड़कर आप भाग गये। फिर रण छोड़कर क्या भागे, सारे शस्त्र-अस्त्र सब छोड़कर भाग गये और शत्रु के हाथ में शस्त्र सौंप दिये।

शब्द को समझ लीजिये

एक कहता है : 'हम दया, करुणा नहीं मानते।' 'दया के माने क्या समझते हो?' 'तो बोलता है : वही पिटी और मर्सी।' मैंने कहा : 'कहाँ करुणा और कहाँ यह मर्सी और पिटी।' करुणा का अर्थ यह है कि [illegible] करने की प्रेरणा है। उस शब्द का निषेध करने के पहले पूरा समझ लीजिये। इस तरह हमारे यहाँ जो अत्यन्त पवित्र शब्द हैं, उनकी निन्दा पश्चिम के शब्द यहाँ लाकर करते हो। लेकिन पश्चिम के विचार पश्चिम के शब्दों पर आधार रखते हैं। यहाँ के शब्द यहाँ के विचार पर आधार रखते हैं। मैं कहना चाहता हूँ कि करुणा शब्द का तर्जुमा करनेवाला शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। वह यहाँ का विचार है। मर्सी और काइण्डनेस इन शब्दों में भी वह अर्थ नहीं आयेगा। वह इस भूमि का शब्द है और इस भूमि के शब्द के साथ, जहाँ भावना जगी है,

चिन्ता नहीं करनी चाहिए। दूसरे कौन से शब्द लाओगे, जिनके आधार पर यहाँ की जनता को खड़ा कर सकते हो ?

दान यानी विभाजन

इसी तरह अब हमने दान कहा तो उसे भिखमंगा कायक्रम कहा गया। यज्ञस्तपस्तथा दानम। यज्ञ दान तप इस तरह भगवद्गीता गर्जना कर रही है। दान का अर्थ सिर्फ 'देना' नहीं है। देना तो एक अर्थ हुआ। दा का अर्थ निवाइड टु कट होता है। दूसरा अर्थ विभाजन भी होता है। दानं संविभाग शंकराचार्य ने कहा है। दान यानी सम्यक् रूप से विभाजन। दा धातु का अर्थ देना भी होता है और विभाजन भी होता है। देने के जरिये विभाजन करने के जरिये भी और कानून के जरिये भी विभाजन हो सकता है। लेकिन देने की प्रक्रिया के जरिये विभाजन इतना पूरा अर्थ दान शब्द में प्रकट होता है। यह अर्थ केवल शंकराचार्य ने नये सिरे से लगाया ऐसा नहीं है। प्राचीनों ने भी किया है। गौतम बुद्ध की भाषा में दान की बहुत बड़ी महिमा है। धम्मपद का एक श्लोक है य संविभाग समबो अप्पणवयी। जिस गौतम बुद्ध ने समविभाग कहा उस दान की अत्यन्त महिमा है। यह शब्द बौद्ध-साहित्य में आया। पचीस सौ साल से चला आता है यह अर्थ। याने दान का अर्थ सम्यक् विभाजन। भगवो याने भगवान् बुद्ध—भगवान् बुद्ध ने जिसे संविभाजन नाम दिया था वह।

यह सारी प्रक्रिया जो नहीं जानते हैं व ऊपर ऊपर का अर्थ देखते हैं और समझते हैं कि यहाँ पश्चिम में जो चला है चिटी एण्ड मर्सी एण्ड आल्म्स गिविंग और भिखमंगा—ये सारी चीजें यहाँ से लाते हैं और उसका सारा पाप यहाँ के शब्दों पर करते हैं और समझते नहीं कि यहाँ की भूमि के शब्दों का क्या अर्थ होता है।

शब्द ही अन्तर्जीवन

मर, मुझे तो इन शब्दों से इतना बल मिलता है कि मेरे बल को कोई खण्डित नहीं कर सकता, जब तक ये शब्द मेरे पास हैं। तुकाराम ने भी

कहा था 'आम्हां घरीं धन, शब्दांचींच रत्नें शब्दांचींच शस्त्रें यत्न करूं। शब्दचि आमुच्या जीवाचें जीवन।' हमारे जीवन की जो मन स्थिति है, वह इसमें की है। शब्द हमारे रत्न हैं और शब्द ही हमारे शस्त्र हैं। इसके अन्दर कोई रत्न नहीं हो सकता और इसके अन्दर कोई शस्त्र नहीं हो सकता—तुकाराम कह रहा है। तो यह जो तुकाराम कह रहा है वह जो शब्द है प्राचीन काल से आज तक गुरुओं की जो अखण्ड धारा बहती आयी है, वह बहुत ही समर्थ सृष्टि है। हमारी सब भाषाओं में वे शब्द घुल मिल गये हैं।

अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया

यह सारी जो सृष्टि प्रकट हुई है वह अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया है। पुराने शब्द तोड़ो पुराने विचारों का खण्डन करो उनकी जगह नये शब्द लाओ, इसने यहाँ की भूमि में एक नयी शब्द-सृष्टि पैदा करी तो वह विचार-बीज वहाँ गहराई में नहीं जाता। उसमें से कुछ पैदा नहीं होता और उसमें ताकत नहीं आती। इसके बजाय अगर एक बीज ले लिया जाय जैसा कि आजकल लोग प्रयोग करने जा रहे हैं बाँस पर गन्ने की कलम लगाने का प्रयोग। इसमें बाँस की ताकत और गन्ने की मधुरता दोनों मिलेगी। क्या नाम दिया जाय उसे? बाँस पर कलम है गन्ने की तो वह गन्ना होगा। गन्ने का रस और बाँस की ताकत उसमें होगी। यह कृषि-शास्त्र में कलम की जो प्रक्रिया चलती है वही प्रक्रिया हिन्दुस्तान में शब्दों पर हुई है। इस तरह की प्रक्रिया में हिन्दुस्तान का सारा शब्द भण्डार बना है। यह हम समझना है। इससे हमें बहुत ताकत मिलती है।

संस्कृत के शब्द बोलते हैं

मैंने कहा था संस्कृत के शब्द बोलते हैं। दूसरी भाषा के शब्द बोलते नहीं हैं। वे बेचारे मूक हैं। बोलना उनको मालूम नहीं। ये बोलते हैं। हस्त याने हाथ याने हँसानेवाला। अरे तुम काम करो, तो हँसोगे। अगर काम नहीं करोगे, तो तुम्हें रोना पड़ेगा। सारी सृष्टि में जो हास्य है वह सारा हास्य इस हस्त में निहित है। हँसती है दुनिया अगर हम

काम करते हैं। लक्ष्मी पैदा होती है तो सारी सृष्टि हँसती है। एक-एक शब्द बोल रहा है आपके साथ। इस प्रकार 'हैण्ड' कुछ बोलता है? 'हैण्ड' याने हाथ। वह हाथ कुछ नहीं बोलता। नदी याने जो निनाद करती है। गंगा ग-ग-ग आवाज करती है। इस तरह बोलनेवाले शब्द जहाँ हैं, वे आपको नयी दृष्टि देते हैं। वह दृष्टि उधर के शब्द नहीं देते।

शब्दों की भाषा

हमने गीता का तर्जुमा मराठी में किया है। उसकी मिसाल देता हूँ। गीता में आया [redacted] 'गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।' मैं सृष्टि में प्रवेश करके भूतों को धारण करता हूँ। उसका मैंने तर्जुमा किया 'आकर्षण बनें भूतें धरारूपें धरीतसे।' अगर मैं लिखता कि 'पृथ्वीरूपें धरीतसे' तो भी अर्थ निकलता। लेकिन धरारूपें कहा, तो जो अर्थ निष्पन्न हुआ वह पृथ्वीरूप में नहीं होता। धरारूपें धारण करता हूँ। पृथ्वी का नाम इसलिए धरा है कि वह धारण करती है। पृथ्वी कब कहलाती है? जब वह फैला हुआ हो। गुर्वी याने जब हम उसका भार ध्यान में लें तब वह गुर्वी कहलायेगी। इस तरह एक ही पृथ्वी के जो दस-पाँच नाम होते हैं वह व्यर्थ का परिग्रह नहीं है। इंग्लिश में 'वाटर' कहते हैं, दूसरा शब्द नहीं। लेटिन का हाइड्रो वगैरह होता होगा। लेकिन हमारे यहाँ उदक नीर, जल है यह किसलिए बना? यह कोई परिग्रह नहीं बनाया है। एक-एक शब्द की ओर देखने की एक-एक दृष्टि है। उस उस दृष्टि से देखते हुए वह शब्द प्रचलित होता है। इसलिए हर शब्द जानदार प्राणवान् जोरदार है और बोलता है। इस बोलनेवाले शब्दों की भाषा हम न समझें और उसका अंग्रेजी में तर्जुमा करके उसके आधार से उस पर प्रकार करने जाय तो उसका यह अर्थ होगा कि हम अपने देश को भारत को बिलकुल ही समझते नहीं हैं।

इन्दौर —प्रार्थना प्रवचन

६-८-६

: ७ :

गायत्री-मन्त्र

'नदी सूक्त'

गायत्री-मन्त्र एक वैदिक प्रार्थना है। वैदिक धर्म में जिसे आजकल हिन्दू धर्म कहते हैं वह सार्वभौम है। यह प्रार्थना सबके लिए है सबको ध्यान में रखकर रची गयी है। जैसे ईसाइयों में Lords prayer होती है, या इस्लाम में 'अल्फातिहा' पारसियों में अषेम् वोहू सिक्खों में एक ओंकार सतनाम है उसी भांति में यह गायत्री है। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में यह है। ऋग्वेद के दस मण्डल हैं। तीसरा मण्डल मुख्यतः विश्वामित्र का है। इस गायत्री-मन्त्र के ऋषि भी वे ही हैं। उनका नदी सूक्त—नदी के साथ संवाद—बहुत प्रसिद्ध है। शतद्रु और व्यास के संगम के साथ विश्वामित्र का वार्तालाप हुआ था। उसका स्वतन्त्र सूक्त वेद में है।

गायत्री सावित्री भी है

गायत्री-मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र हैं और छन्द गायत्री है। इस छन्द के अक्षर चौबीस प्रकार होते हैं। छन्द पर से इसका नाम गायत्री है। बाकी यह सावित्री है यानी सवितादेव की स्तुति है इसलिए सावित्री पर इसका छन्द गायत्री होने से इसे गायत्री मन्त्र कहा गया है। गायत्री के चौबीस अक्षर हैं। ये मनुष्य की आयु के चौबीस वर्ष के प्रतिनिधि माने गये हैं। एक-एक अक्षर एक-एक साल के लिए माना गया। प्रथम चौबीस वर्ष को ब्रह्मचर्याश्रम माना गया था। अतएव यह ब्रह्मचर्य का भी मन्त्र माना जाता है। प्रथम चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन होता है उसके बाद ब्रह्मचर्य का पालन, गृहस्थ की मर्यादा में गृहस्थ के लिए होता है। फिर वानप्रस्थाश्रम और संन्यास में, इसकी पूर्णता होती है। यह गायत्री-मन्त्र

सिर्फ ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए ही नहीं है, सबके लिए है। उसमें चौबीस अक्षरों को चौबीस वर्ष के प्रतिनिधि मानकर ब्रह्मचर्य का विशेष ध्यान किया गया है। इस मन्त्र का छन्द गायत्री त्रिपदा है। अक्सर सारे छन्द दो या चार चरणों के होते हैं लेकिन यह तीन चरणों का है और त्रिपदा बहुत अच्छी बैठती है। दो पाँववाली चीज मनुष्य है, चार पाँववाली चीज जानवर है तीन पाँववाला टाइसिकिल होती है, वैसा कोई जानवर हो तो मालूम नहीं। त्रिपदा, तिपाई बहुत अच्छी बैठती है। चार पाँववाला चीज भी जरा कमजोर पड़ती है। पर त्रिपदा मजबूत बैठती है।

यह सार भगवान् का नाम है

ॐ-सार भगवान् का नाम है। भगवान् का कोई स्वतन्त्र नाम होना चाहिए ऐसी अपेक्षा भक्तों की होती है। यद्यपि विष्णु-सहस्रनाम में भगवान् के एक हजार नाम हैं सन्ध्या-उपासना में चौबीस नाम बोले जाते हैं और वैसे भगवान् के तो अनन्त नाम होते हैं। रामानुज ने अच्छा विचार रखा। उन्होंने कहा कि दुनिया के जितने शब्द हैं उन सबका अर्थ भगवान् है। हर शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक बाह्य अर्थ होता है और दूसरा आन्तरिक। हर शब्द का आन्तरिक अर्थ भगवान् है। इस दृष्टि से शब्दमात्र भगवान् के नाम हैं। वस्तुतः वह नाम रहित है। लेकिन चिन्तन के लिए नाम लिये जाते हैं। अपने देश में भगवान् का नाम लिया गया है। राम-नाम भी लिया जा रहा है, सगुण परमेश्वर के लिए। उसीको निर्गुण मानकर कबीर नानक आदि ने प्रयोग किया है। राम मूलतः सगुण होते हुए भी सगुण और निर्गुण के प्रतिनिधि हो चुके हैं, लेकिन इस नाम के अलावा जो सर्वमान्य नाम वैदिक धर्म में चला वह है ॐ। ॐ वेदों का सार माना गया, जैसे रामायण का सार राम-नाम है।

ॐ भगवन् नाम

ॐ के तीनों वर्ण मिलकर एक मात्रा मानी गयी है इसलिए गायत्री त्रिपदा है। गायत्री-मन्त्र का एक-एक चरण, ॐ की एक-एक मात्रा है।

पूरा गायत्री-मंत्र ॐकार का चिह्न है ऐसा माना जाता है। फिर भी गायत्री में शुरू में 'ॐ भूर्भुव स्व' इस तरह भगवान् का नाम-स्मरण करके मंत्र बोला जाता है। ॐ तो परमात्मा का नाम है, जो अपने हृदय में अन्तरात्मा के रूप में है और दुनिया में विश्वात्मा के रूप में है। उसके 'भूर्भुव स्व' ये तीन रूप हैं।

भूर्भुव स्व

पृथ्वी अन्तरिक्ष स्वर्ग मिलकर यह सामने सृष्टि खड़ी है, उसमें स्वर्ग माने ऊपर का हिस्सा। जहाँ बहुत सारे नक्षत्र और तारे चमकते हैं वह है स्वर्ग। ये तीन हिस्से ब्रह्माण्ड के हैं जो अपने पिण्ड में भी हैं। भू माने शरीर देह अन्तरिक्ष के लिए भुव शब्द लिया। उसका अर्थ प्राण है। और स्वर्ग के लिए स्व शब्द लिया उसका अर्थ मन है। देह प्राण और मन ये अन्तरात्मा के तीन अवयव हैं और सृष्टि में पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्ग ये तीन अंग हैं। इस तरह पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों की तरफ ध्यान देकर 'ॐ भूर्भुव स्व' इसका अर्थ मुख्यतः देह प्राण और मन ही लेना चाहिए। जहाँ अन्तरात्मा का चिंतन करते हैं वहाँ देह प्राण, मन यहाँ अर्थ लेना चाहिए। यह उस मंत्र की शुरुआत है।

व्यक्तिगत और सामूहिक प्रार्थना

धियो यो नः प्रचोदयात् यह वरदान माँगा है। भगवान् हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे। मुख्य प्रार्थना का जो अंश है जिसे हम माँग कहते हैं वह इतनी ही है। उसमें ध्यान रखने लायक चीज यह है कि अपने लिए जो माँगा है उसमें सबके लिए वह माँगते हुए प्रार्थना की है। यद्यपि गायत्री मंत्र एकान्त में गाया जाता है, तथापि एकान्त में बैठे-बैठे अपने में सबको मानकर ही वह प्रार्थना करेगा। इसमें सामूहिक और व्यक्तिगत प्रार्थना का जोड़ है। व्यक्तिगत प्रार्थना में मनुष्य अपने लिए सोचता है और ईश्वर के साथ अपना नाता जोड़ता है। सामूहिक प्रार्थना में सबके लिए सोचता है सन्त सज्जन, भाई-बहन माने समाज के साथ अपना नाता जोड़ता है और

उनके जरिये परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ता है। दोनों प्रार्थनाएँ एक दूसरे की पूरक हैं। सामूहिक प्रार्थना में भी एकाग्रता कई बातों पर निर्भर करती है। एक साथ एक समय सब बैठते हैं तो पूर्णता का अनुभव आता है। एकाग्रता के लिए सबका सहयोग चाहिए और कई प्रकार का संयोग बनना चाहिए। संयोग अगर नहीं बनते, तो प्रार्थना में एकाग्रता रखना जरा मुश्किल होता है। इसका अभ्यास करना होगा। पर एकान्त में एकाग्रता की सहूलियत है बशर्ते कि चित्त चारों तरफ जाने न लगे। बहुधा ऐसा होता है कि जब समुदाय में सबके सहयोग से अनुकूलता होती है वैसे एकान्त में एकाग्रता से अनुकूलता होती है और जैसे समुदाय में सबके प्रयत्न से एकाग्रता होती है वैसे व्यक्तिगत प्रार्थना में चित्त पर बाह्य अंकुश न होने के कारण चित्त का चारों तरफ दौड़ना या निद्रा में डूब जाना संभव होता है। इसलिए दोनों ओर खतरा होता है। अतः दोनों में इसका ख्याल रखना पड़ता है। एकान्त में भी समूह का ख्याल करके ही प्रार्थना हो तो दोनों के गुण उसमें आ सकते हैं। ऐसी प्रार्थना में हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे इस तरह एक-एक आदमी व्यक्तिगत तौर पर अलग अलग बैठकर प्रार्थना करता है। उसमें सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों प्रार्थनाओं का योग होता है। भगवान् के पास बैठकर अपने लिए कुछ माँगा तो उसमें हम आत्मा की अव्यापकता मान लेते हैं और भगवान् के पास बैठकर सबके लिए माँगो, तो आत्मा की व्यापकता का ठीक भान होता है। इसलिए यह विशेष माना जायगा कि एकान्त में बैठकर भी समूह के लिए प्रार्थना की गयी। यह इसकी विशेषता है।

बुद्धि का मार्ग-दर्शन मानना चाहिए

दूसरी विशेषता इसमें यह है कि बुद्धि की याचना की गयी है। दूसरी भी याचना की जाती है, लेकिन सिर्फ बुद्धि को प्रेरणा दे, ऐसा इसमें कहा है। मनुष्य के लिए मार्गदर्शक के रूप में आखिरी चीज बुद्धि ही है। उसके बाद मन, इन्द्रिय आदि सब आते हैं। गुरु हमें उपदेश देता है, तो उसे समझने के लिए भी बुद्धि चाहिए। शिष्य नहीं समझ सका या गलत

अन्दर उसे वरते हैं, तो वह आपको वरेगा याने वह तेज आपको प्राप्त होगा। वरना की अनिवार्यता आपकी है। याने आप पर वह भगवान् वहाँ करता। अगर वरण करते हैं तो वह प्राप्त होता है। इसलिए भक्ति में भी भक्त को जिम्मेदारी वरण करने की होती है, जैसे श्रीकृष्ण का पत्र लिखकर रुक्मिणी ने वरण किया। उसने लिखा कि आपके चरणों की सेवा मैं करना चाहती हूँ। पत्र लिखकर उसने वरण किया। उसने वरण न किया होता, तो भगवान् श्रीकृष्ण उस पर अनुग्रह करनेवाले नहीं थे। उसी तरह हम उस तेज का वरण करते हैं, तभी वह तेज अपना काम करता है। उसका काम है मल-दहन। अगर हमें वरण नहीं करना है, हम मल-दहन नहीं चाहते हैं और फिर भी वह दहन करेगा, तो हम डर जायेंगे और हमें वह अच्छा नहीं लगेगा। जैसे करुणामयी माता वह रही है और हम उसका उपयोग करते हैं, लेकिन अति करुणा से और प्रेम से गंगा घर-घर में आने लगेगी, तो लोग डर जायेंगे और घर छोड़कर भागेंगे। इसलिए वह आक्रमण नहीं करती। उसी तरह भगवान् का तेज हम पर पहुँचेगा तो हम डर जायेंगे, हमारा काम नहीं होगा। वे आक्रमण नहीं करते। इसलिए भगवान् ने कहा, तुम वरण करो तो हम आयेंगे। जितनी भावना जिसने मन में वरण करो, उतने मन में हम आयेंगे। कम मात्रा में भी नहीं होंगे, उससे ज्यादा मात्रा में हम नहीं आयेंगे, कम मात्रा में भी नहीं आयेंगे। इसलिए 'वरेण्यम्' कहा है। उसका अर्थ है, वरणीय भर्ग।

ॐ तत्

ॐ तत्। तत् का मतलब है—ऊँचा, अलिप्त, हमसे दूर। सूर्यनारायण दूर रहते हैं। उस वक्त लाखों-मील वाला जाता है। दूसरे वक्त ... सूर्यनारायण हम तक रहते हैं। उस वक्त भी ... नहीं है, लेकिन ... का तेज ... रहा है। यानी उसका वरण करना है। ... है कि ... सूर्य की किरणें आती हैं यानी एक समय में ... मनुष्यों का ... होता है। वह दाहक तेज है दहन करनेवाला। ... है और हम ... रहते हैं।

करना है। राजस बुद्धि हो तो मनुष्य को गढे में ले जायगी। इसलिए बुद्धि सात्त्विक होनी चाहिए और सात्त्विक बुद्धि की प्रार्थना की गयी है। पहले भगवान् के वर्णन का वर्णन है। हम इसका ध्यान करते हैं ऐसा वाक्य आया है— धीमहि। हम सब ध्यान करते हैं। अकेले ध्यान कर रहे हैं, ऐसा दीखेगा। लेकिन हम सब ध्यान करते हैं यह उसमें है। किस चीज का हम ध्यान करते हैं? ध्यान के लिए ध्यानगम्य वस्तु चाहिए। इसलिए सविता का नाम लिया।

सविता प्रेरणा देनेवाला

सविता शब्द देवता का वाचक है। वेदों में शब्दरूप देवता माने गये हैं। सविता यानी स्थूलमूर्ति सूर्य जिसका सामने उदय हो रहा है, जो सामने खड़ा है। लेकिन सविता एक शब्द है और देवता का रूप शब्द ही होता है, ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। सविता का अर्थ है प्रेरणा देनेवाला। प्रेरणा देनेवाले भगवान् से प्रेरणा देने की माँग की गयी है। प्रेरणा देनेवाले से प्रेरणा की माँग करते हैं। भगवान् के तो अनेक गुण हैं। अगर दया का गुण चाहते हैं तो दयालु भगवान् की प्रार्थना करेंगे— 'रहमानुर्रहीम' भगवान् की प्रार्थना करेंगे। प्रेम चाहिए तो प्रेममय भगवान् से प्रेम माँगते हैं। जिस गुण की प्राप्ति करनी है उस गुण की परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं। परमात्मा के अनन्त गुण हैं लेकिन ध्यान के लिए विशेष गुण का ही ध्यान हो सकता है। जिस गुण का ध्यान होगा उसका जिस गुण की चाह है। भक्ति का ध्यान हो सकता है तो गुण प्राप्ति भक्ति का स्वरूप होगा। मानस में प्रभुजी में भक्ति का न होना बड़ा धोखा बताया है— 'बिनु गुण कीन्हें भगति न होई।' गुण प्राप्त किये बिना भक्ति नहीं होती। सद्गुणों की प्राप्ति ही भगवान् की भक्ति का रूप है। दयालु भगवान् की भक्ति करते-करते हमें दया प्राप्त न हो, तो हमने भगवान् की भक्ति हासिल नहीं की। जिस भगवान् का हम ध्यान करते हैं वह गुण हमें प्राप्त करना चाहिए, इसलिए उस गुणवान् भगवान् का हम ध्यान करते हैं। भक्ति का स्वरूप गुण प्राप्ति है। इतना न होने से भक्ति के विषय में गलतफहमी नहीं हो सकती।

अगर उसे वरते हैं, तो वह आपको वरेगा यानी वह तेज आपको प्राप्त होगा। कर्ता की भूमिका आपकी है। यानी आप पर वह आक्रमण नहीं करता। आप वरण करते हैं तो वह प्राप्त होता है। इसलिए भक्ति में भी भक्त की जिम्मेवारी वरण करने की होती है, जैसे श्रीकृष्ण को पत्र लिखकर रुक्मिणी ने वरण किया। उसने लिखा कि आपके चरण की सेवा मैं करना चाहती हूँ। पत्र लिखकर उसने वरण किया। उसने वरण न किया होता तो भगवान् श्रीकृष्ण उस पर अनुग्रह करनेवाले नहीं थे। उसी तरह हम उस तेज का वरण करते हैं तभी वह तेज अपना काम करता है। उसका काम है मल-दहन। अगर हम वरण नहीं करते हैं, हम मल-दहन नहीं चाहते हैं और फिर भी वह दहन करेगा, तो हम डर जायेंगे और हमें वह अच्छा नहीं लगेगा। जैसे करुणामयी गंगा बह रही है और हम उसका उपयोग करते हैं लेकिन अति करुणा से और प्रेम से गंगा यदि घर घर में आने लगेगी तो लोग डर जायेंगे और घर छोड़कर भाग जायेंगे। इसलिए वह आक्रमण नहीं करती। उसी तरह भगवान् का तेज हम पर पहुँचेगा तो हम डर जायेंगे हमारा काम नहीं होगा। वे आक्रमण नहीं करते। इसलिए भगवान् ने कहा, तुम वरण करो तो हम आयेंगे। जितने अंश में वरण करो उतने अंश में हम आयेंगे। जितनी आकांक्षा होगी उससे ज्यादा मात्रा में हम नहीं आयेंगे कम मात्रा में भी नहीं आयेंगे। इसलिए 'वरेण्यम्' कहा है। उसका अर्थ है वरणीय प्रभु।

ॐ तत्

ॐ तत्। तत् का मतलब है—ऊँचा, अलिप्त हमसे दूर। सूर्यनारायण का उदय हो रहा है। उस वक्त गायत्री मंत्र बोला जाता है। दूसरे वक्त भी गायत्री-मंत्र कह सकते हैं। उसमें वक्त की पाबन्दी नहीं है, लेकिन अक्सर सूर्य का तेज उग रहा है। वहाँ उसका वरण करना है। आप जानते हैं कि जहाँ सूर्य की किरणें आती हैं वहाँ एक क्षण में लाखों जन्तुओं का संहार होता है। वह दाहक तेज है, दहन करनेवाला। वह मल का दहन करता है। वह सामने उग रहा है और हम यहाँ खड़े हैं।

ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।' देव का अर्थ है देने के लिए बैठा हुआ। हम वरण करें व देने के लिए तैयार हैं। वे देव हैं इसलिए कंजूस नहीं हैं। आक्रमणकारी नहीं हैं हमला नहीं करते लेकिन आप वरना चाहें तो वरिये। वे चाहेंगे कि आप उनका वरण करें। अपनी तरफ से वे देने बैठे हैं तो हमें स्वाभाविक स्फूर्ति होती है और हम मांगते हैं। उनकी तरफ से हमारा वरण हो चुका है तो हम भी माँग करें। केवल हम पर माँग करने का आग्रह है ऐसा नहीं। वे कहते हैं कि वे बैठे हैं उत्सुकता से देने के लिए बैठे हैं और कहते हैं ले लो। अब हम कहेंगे दीजिये तो देंगे। नहीं तो नहीं देंगे। जैसे बाजार में हम जाते हैं, तो दूकान में जाना पड़ता है लेकिन फेरीवाला घर घर पहुंचता है। कोई तेल लेकर आता है तो घर तक पहुंच जाता है। पर वह भी आक्रमण नहीं करेगा। आपको पूछ लेगा। अगर आपको चाहिए तो देगा नहीं तो चला जायगा। लेकिन वह आपके दरवाजे पर आता है। वैसे प्रभु देव है देने के लिए तैयार हैं और राह देखते हैं। अगर आप चाहते हैं तो वरण करें—ऐसी तैयारी से भगवान् खड़े हैं। भगवान् सूर्यनारायण आपका दरवाजा अगर खुला होगा तो अन्दर आयेंगे। आप जितना खोलेंगे उतना वे अन्दर आयेंगे। धक्का देकर अन्दर नहीं आयेंगे। वे बाहर खड़े हैं। कहते हैं खोलो और ले लो। आपकी सेवा में उपस्थित हूं। जब चाहें तब वे खड़े हैं। कुछ लोग सूर्योदय के बाद चार घंटे के बाद उठते हैं कुछ लोग जल्दी उठते हैं। उस दिन अप्पासाहब सुना रहे थे कोणी शीघ्र जागणारे कोणी हसू जागणारे। इस तरह कोई जल्दी उठता है कोई देर से लेकिन जागते हैं जरूर क्योंकि भगवान् बैठे हैं। कोई जल्दी जागेगा कोई चार बजे, कोई छह बजे कोई सूर्योदय के बाद, कोई आठ बजे—भले ही देर करें लेकिन उठते ही हैं। भगवान् स्वयं खड़े हैं तो हरएक जाग जाता है। इस तरह तत् में अलिप्तता दिखाया है। वर्ड्सवर्थ ने मिल्टन का वर्णन किया है "Thy soul like a star that dwelt apart"—तेरा मन तारिका के समान सबसे ऊंचा रहा है।

"

हम लोग तारिका की उपमा नहीं देते हैं सूर्यनारायण की देते हैं। वे अलिप्त तो हैं लेकिन व्यापक है। इसलिए नानक ने कहा है 'भानु बिंब पहा, निर्मल निराले।'—भानुबिंब सामने है वह निर्मल है और निराला याने सबसे अलग है निर्लिप्त है। तो सविता को वरने की जिम्मेदारी आप पर है। उसका तेज दाहक है इसलिए मल का दहन अवश्य होगा, यह बताया है। देव यानी देने के लिए तैयार बैठे हैं। धीमहि याने हम सब मिलकर ध्यान करते हैं। चाहे कोई अकेला बैठा है लेकिन अपने में सबको मानकर प्रार्थना करता है। प्रार्थना में बुद्धि की प्रेरणा की प्रार्थना की गयी है।

मिट्टी का पशुपति

सूर्य को भगवान् का प्रतीक माना गया है। इसीलिए निराकारवादी हमेशा इनके खिलाफ चलते हैं। कुरानवाले निराकारवादी हैं लेकिन उसमें भी परमेश्वर का चेहरा और परमेश्वर का हाथ ये दो शब्द आये हैं। हम सब जो काम करते हैं वह भगवान् के चेहरे के दर्शन के लिए। भगवान् का हाथ हमारे पीछे मदद के लिए आता है। जहां भगवान् का हाथ और चेहरा कहा वहीं साकारता का भान हुआ। लेकिन मनुष्य की वाणी है जानने के लिए इसलिए कुछ न कुछ प्रयोग करने पड़ते हैं। प्रयोग करने से उनका मतलब यही नहीं है कि प्रभु साकार हैं। वे कहते हैं कि प्रभु निराकार हैं। जहां बोलने के लिए जरा दिक्कत होती है वहां वह न हो इसलिए मैं जरा फर्क समझता हूं। सगुण एक बात है और साकार दूसरी। सगुण निराकार भी होता है और साकार भी। जहां गुण है और आकार है वहां सगुण साकार होता है। जहां गुण है और आकार नहीं है वहां सगुण निराकार और जहां गुण भी नहीं और आकार भी नहीं वहां निर्गुण निराकार होता है। यह जो साक्षात् सृष्टि सामने खड़ी है वह सगुण साकार है और हम जो परमेश्वर मानते हैं वह सगुण निराकार है। जैसे ईसा और नानक के प्रभु सगुण निराकार थे। आकार उनमें नहीं था। परमेश्वर में गुण तो भरे हैं। शंकर और मयूर का प्रभु निर्गुण निराकार था। जहां आकार नहीं और गुण भी

नहीं ऐसी कल्पना करना मुश्किल है। मगर यह तत्वज्ञान में और कबीर के दरबार में भी करीब-करीब निर्गुण परमेश्वर है। यह हिन्दुस्तान में प्रचलित है। वैसे सगुण साकार भी प्रचलित है। जहाँ सूर्य का प्रतीक माना वहाँ ईश्वर का एक चिह्नमात्र की हम उपासना कर रहे हैं। इस उपासना का कुरान निषेध करता है। ला तसजुदू लिश्शम्सि व ला लिल कमरि वसजुदू लिल्लाहिल्लज़ी ख़लक़हुन्न इन्कुन्तुम इय्याहु ताअबुदून अर्थात् तुम सूर्य और चन्द्र की उपासना मत करो। उनके सामने सिजदा मत करो। अल्लाह का सिजदा करो। जिसने सूर्य और चन्द्र का पैदा किया है उसकी भक्ति करो, इबादत करो। इस तरह स्पष्टरूपेण निषेध किया है। वैदिक धर्म में कहा 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।' एक परमेश्वर है। वह एक ही है। वह निराकार है इसमें शक नहीं लेकिन उसका बहुधा याने बहुविधरूपेण वर्णन किया जाता है। तो अग्नि के रूप में सूर्य के रूप में वायु के रूप में या अनेक रूपों में उपासक उपासना करते हैं और उसका वर्णन करते हैं। बहुत लोगों का इस पर आक्षेप है कि मिथ्या वस्तु का आधार लेकर आप उपासना करते हैं। आप परमात्मा की कल्पना सूर्य में करते हैं। याने आप काल्पनिक उपासना करते हैं। इसका उत्तर यही है सूर्य परमात्मा ही है। परमेश्वर से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। उसमें से हमने प्रार्थना के लिए एक वस्तु चुन ली तो गलत काम नहीं हुआ। अगर ऐसा होता कि परमात्मा सृष्टि के बाहर कहीं होता तो मान सकते थे कि सृष्टि में से चीज लेकर परमात्मा का आरोपण मिथ्या आरोपण होता है। लेकिन जैसे तुकाराम ने कहा 'कैसा मातीचा गणपति। परि मातीची काय महती? शिवपूजा शिवासी पावे।' हम मृत्तिका का लिंग बनाकर उसकी पूजा करते हैं। वह मिट्टी की पूजा नहीं है। वह शिव है और उसकी हम पूजा करते हैं। 'माती मातीमाजी समावे।' याने शिव का लिंग बनाकर शिव की पूजा करते हैं, उसका विसर्जन करते हैं तो शिव का शिव की पूजा पहुँचता है और वह मिट्टी मिट्टी में मिल जाता है। याने भगवान् का आरोपण उस पर हमने किया।

८

सत्य, प्रेम, करुणा

वैराग्य और अनुराग का परस्पर स्थान

आप लोग यहाँ एक अच्छी प्रेरणा से एक अच्छा काम कर रहे हैं। यहाँ (गीताभवन में) आने पर हमने यहाँ रखे हुए चित्र देखे। उनमें राम और कृष्ण के चित्र हैं। कृष्ण की बाल-लीला है और राम-जन्म के तुलसी रामायण के पद हैं। गीता के कुछ श्लोक हैं और शंकर भगवान् की एक तसवीर है। इस तरह शंकर, राम और कृष्ण को आपने एकत्र किया यह बहुत अच्छा काम आपने किया है। लेकिन इसका श्रेय आपको नहीं। यह काम हमारे पूर्वज कर चुके हैं। हरि और हर यानी विष्णु और शंकर में कोई भेद नहीं है। इस समन्वय विचार को हमारे पूर्वजों ने बहुत अनुभव से हासिल किया है। यहाँ विष्णु के उपासक वैष्णव थे। वे प्रेम प्रधान थे, अनुराग प्रधान थे। और जब थे शिव भक्त जो वैराग्य प्रधान थे। वैराग्य और अनुराग में पहले तो कश्मकश चला, मानो उपासना एक-दूसरे के खिलाफ जा रही हो। ऐसा सारे भक्तजनों को हुआ जो अक्सर एकांगी चिन्तन ही किया करते हैं। इसलिए काफी कश्मकश चली। आखिर इन शैव और वैष्णवों का समन्वय का दर्शन हुआ, अभेद उनके ध्यान में आया। एक सिखाता है भगवान् के लिए अनुराग और दूसरा सिखाता है संसार के लिए वैराग्य। दोनों का विरोध नहीं हो सकता। दोनों एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। संसार के लिए अगर वैराग्य नहीं होगा तो ईश्वर का अनुराग असम्भव है। ईश्वर के लिए अगर अनुराग नहीं रहा तो संसार के प्रति रुचि रहेगी ही और वैराग्य नहीं आयेगा। इसलिए संसार-वैराग्य और परमेश्वर-अनुराग ये परस्पर पोषक वस्तुएँ हैं, विरोधी नहीं। इन दोनों

ठीक यही होता है, जब हम मर जाते हैं। अन्तरात्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। देह की मिट्टी ब्रह्माण्ड की मिट्टी में लीन हो जाती है। उसी तरह हम सूर्यनारायण का प्रताप मानकर पूजा करते हैं, उपासना करते हैं तो गलत काम करते हैं ऐसा नहीं माना जायगा। वह काम ज्ञान विरोधी नहीं है। लेकिन सूर्य की तरफ की दृष्टि सीमित रही और सूर्य के अभाव में परमात्मा का अभाव होगा, ऐसा माना। जहाँ सूर्य का उदय हुआ, वहाँ परमात्मा का उदय माना। जहाँ सूर्य ऊपर चढ़ा, वहाँ परमात्मा भी ऊपर चढ़े और जहाँ सूर्य का अस्त हुआ वहाँ परमात्मा का अस्त हुआ—वे समाप्त हो गये रात में अंधेरा पड़ा तो परमेश्वर खत्म हो गया। इस तरह के चित्र आँखों के सामने खड़े करेंगे, तो भयानक बात होगी। इसलिए ये जो निषेध करनेवाले कुरानवाले या अन्य निराकारवादी हैं उनका भी हम पर उपकार है।

इन्दौर —पंजाब के कार्यकर्ताओं से

१० ८ ६०

था। भागवतकार ने कृष्ण के बारे में यह तक कहा कि कृष्ण की [illegible] कला लिए रहा है। कहा कि कृष्ण-लीला का वर्णन कर रहा है। अर्थात् पहले राम-चरित्र और कृष्ण-लीला का आधार था। राम और कृष्ण दोनों का समन्वय नहीं हुआ था। एक थे राम-चरित के भक्त और दूसरे थे कृष्ण [illegible] के उपासक। [illegible] मर्यादा में रहते थे। [illegible] का [illegible] का चरित्र बताते थे। [illegible]-नारायण और दूसरे [illegible] मर्यादा [illegible] है, जिसे वल्लभाचार्य ने 'पुष्टि' नाम दिया। मर्यादा विरुद्ध [illegible] मर्यादा विरुद्ध पुष्टि। इसमें विरोध का भास हुआ। राम के उपासकों का [illegible] दीखता है तो तुलसीदासजी में देखिये। तुलसीदासजी की भक्ति [illegible] मर्यादा के भीतर है। उनकी भी भक्ति-वचन ऐसा न लिखा, जिसमें [illegible]-मर्यादा का भंग होता हो। [illegible] मर्यादा से बाहर जानेवाला 'उन्मर्याद' [illegible] मर्यादा के भीतर रहनेवाला यहाँ [illegible] है—मर्यादा से ऊपर जानेवाला उन्मर्याद [illegible] भक्ति रखना हो तो कृष्ण में रखना चाहिए। सूरदास के पदों में आपको 'उन्मर्याद' भक्ति दीख पड़ेगी। सत्य और प्रेम का [illegible] में आपसमें में विरोध प्रकट होता था। [illegible] ध्यान में आता कि सत्य व सत्य प्रेम का विरोध [illegible] है। दोनों का समन्वय हो सकता है। राम और कृष्ण की मूर्ति बनी। और [illegible] है कि इन दिनों [illegible] के नाम भी होते हैं राम-कृष्ण। [illegible] राम और कृष्ण [illegible]। [illegible] हरि और हर को जोड़कर 'हरिहर' [illegible] राम और कृष्ण को जोड़कर 'राम-कृष्ण' बनाया। यह राम-कृष्ण [illegible] मनुष्य का [illegible] जाता है। यह समन्वय हमारे [illegible] कर चुके थे। और यह माना हुआ जाता है कि राम भक्ति और कृष्ण भक्ति का [illegible] होता है और दोनों मिलकर एक भक्ति है, ऐसा मानते हैं। [illegible] यह [illegible] किया [illegible]। तुलसी [illegible] है। [illegible] किया। हरि-हर को जोड़ा और राम-कृष्ण को जोड़ने का काम [illegible] किया और दोनों का [illegible] का [illegible]। [illegible] है। [illegible] बाद में [illegible] हुए थे।

का समन्वय हो सकता है और करना ही चाहिए। तभी पूर्ण दर्शन होगा। इसका खयाल हमारे पूर्वजों को आ गया था। यहाँ तक कि 'हरि-हर' नाम की भी एक मूर्ति उन्होंने बना ली। हरि-हर की मूर्ति यानी जिसमें हरि और हर दोनों जुड़ जाते हैं। यह काम हमने पहले ही कर रखा था। आपने उसे यहाँ स्वीकार किया है यह अच्छी बात है।

मर्यादा और प्रेम का समन्वय

राम और कृष्ण को आपने इकट्ठा किया, यह भी बहुत अच्छी बात है। लेकिन इसका भी श्रेय हम आपको नहीं है। इसका श्रेय भी पूर्वजों को है। रामचन्द्र सत्यावतार हुए। हमने उनको सत्यनिष्ठा का प्रतीक माना था और सब प्रकार की धर्म मर्यादा का स्वयं आचरण करके लोगों के सामने रखना यह उनके जीवन का सार था। पश्चात् भगवान् कृष्ण आये, जो प्रेम-मूर्ति थे और जिन्होंने केवल प्रेम प्रवाहित किया। प्रेम के प्रवाह में मर्यादाएं टूट जाती हैं तो कोई हर्ज नहीं। प्रेम के अभाव में जो मर्यादाएं टूट जाती हैं वे अधर्म हैं। लेकिन प्रेम के कारण, भक्ति की मस्ती के कारण जो मर्यादाएं टूट जाती है, उनका टूटना गलत नहीं अनुकूल ही है। इस तरह जब हम समन्वय करते हैं तो यह समझ में आता है। समन्वय नहीं करते हैं तो दोनों में विरोध पैदा होता है। एक तो सत्यनिष्ठ नीति नियमों का दृढ़ आग्रही धर्म-परायण, मर्यादा-सम्पन्न और दूसरा उच्छृंखल मस्त मर्यादाओं को तोड़नेवाला और प्रतिज्ञाओं का भी परिस्थिति के अनुकूल अर्थ करनेवाला। एक प्रतिज्ञा परायण उसके अक्षर अक्षर में अत्यन्त निष्ठा रखनेवाला भावार्थ के साथ अक्षरार्थ का भी पालन करनेवाला। और दूसरा अक्षरार्थ को एक ओर रखकर भावार्थ प्रधान। इन दोनों में विरोध-सा प्रतीत होता है। रामचन्द्र का चरित्र, आजकल तो उसे हम 'राम-लीला' भी कहते हैं लेकिन यह पीछे से बना हुआ शब्द है। पहले तो रामस्य चरित कहते। वाल्मीकि ने जब रामायण लिखी, तो कहा कि मैं राम चरित्र लिखता हूँ। चरित्र जिसे अंग्रेजी में Life कहते हैं यानी जीवनी। रामजी की जीवनी मैं लिख रहा हूँ, ऐसा वाल्मीकि ने

भावना होती है और सिंह में जो पराक्रम भावना होती है उनका योग होता है। सिंहों की पराक्रम-शक्ति और भेड़ों की समूह-शक्ति—इकट्ठा रहने की शक्ति ये जहाँ एकत्र हो जाती हैं वहाँ अहिंसा पनपती है। भेड़ पराक्रमी हैं और फिर भी एकत्र काम करते हैं। दुर्बल लोग एकत्र हो जाते हैं—क्योंकि वे दुर्बल होते हैं। पराक्रमी लोग एकत्र नहीं होते। अपने पराक्रम के घमण्ड में काम करते रहते हैं। पराक्रमी भी हों और एकता की आवश्यकता महसूस करके सबके साथ मिल-जुलकर काम करते हों, तब तो अहिंसा बनती है। इसलिए अहिंसा का एक संकेत चित्र बनाने के विचार से तीन सिंहों को एकत्र किया। दरअसल वे चार सिंह हैं। वैसे फोटो में तीन दीखते हैं तीन और एक लेकिन वे हैं चार। चारों दिशाओं में चार सिंह इकट्ठा हो रहे हैं ऐसा उसने एक चित्र खींचा। अब अशोक का जो सिंह का सपना था वह सिद्ध नहीं हुआ उस जमाने में, विज्ञान-शक्ति के अभाव में। उन दिनों व्यापक प्रचार जल्दी हो ही नहीं सकता था। हम नौ साल से भारत में घूम रहे हैं। बुद्ध भगवान् कोई पैंतालीस साल घूमे लेकिन हमारी बात दुनिया जानती है। बुद्ध भगवान् को तो तीन सौ साल बाद जब अशोक हुआ तब लोगों ने जाना। तब तक तो बुद्ध भगवान् को लोगों ने जाना नहीं। ईसामसीह को किसने जाना था? डेढ़-सवा सौ साल के बाद—सेण्ट पाल के बाद—कुछ जानकारी हुई थी। फिर धीरे-धीरे धीरे-धीरे और आज वे दुनिया में व्याप्त हैं। उस जमाने में जब ईसा प्लेस्टाइन में घूमते थे तब तो उसी क्षेत्र में उनकी जानकारी थी। आज ज्ञान प्रचार के बहुत बड़े साधन हमारे हाथ में हैं। इसलिए कहता हूँ कि एक मौका भारत को मिला है—अहिंसा की सिद्धि करके दुनिया को प्रेम-सन्देश देने का और प्रेम के रास्ते से मसले हल करने की राह दिखाने का। ऐसा मौका, जो पहले कभी मिला नहीं था। अब इस दृष्टि से इस स्वराज्य का उपयोग करना चाहिए, न कि उसका सत्ता के टुकड़े हम बाँट लें। अगर इस तरह हम समझें कि अपना अपना स्वार्थ साधने के लिए एक मौका

अपूर्व अवसर

लेकिन आपने जो दो काम किये, उनके अलावा हिन्दुस्तान की सभ्यता की रक्षा के लिए और विश्व-व्यापार जो हिन्दुस्तान का काम है जिसे करने का मौका अभी आया है, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, उस लिहाज से और नया काम करने का जरूरत है। एक मौका हमको मिला है जो पहले नहीं मिला था। स्वराज्य प्राप्ति के बाद जो मौका हमको मिला है, उसको हमारे पार्टीदिवाले सत्ता बाँटने का मौका समझते हैं। लेकिन वे समझे नहीं। दरअसल आज मौका ऐसा मिला है, जैसा कि दो हजार वर्ष पहले मिला था। इतने वर्षों के बीच सारे भारत में एक राज्य कभी हुआ नहीं था। यों आज भी भारत का एक हिस्सा अलग हो गया है—पाकिस्तान के नाम से। अशोक के जमाने में भी हिन्दुस्तान का एक हिस्सा पाण्ड्य, चेल चोल ऐसे तीन राजाओं के हाथ में था और अशोक के राज्य में शामिल नहीं था। आज वह दक्षिणी हिस्सा तो भारत में शामिल है लेकिन उत्तर का एक हिस्सा पाकिस्तान के नाम से बन गया है। फिर भी भारत का जितना हिस्सा एक राज्य में आया है उतना पहले कभी नहीं आया था। दूसरे विज्ञान का हमको आज जो लाभ मिला है, वह अशोक के जमाने में नहीं मिला था।

अशोक का सपना

अशोक ने क्या किया? तीन सिंहों को एकत्र किया। तीन सिंह एकत्र करके अपना एक अलग Symbol बनाया। अब यह कभी पागलपन उसने किया? आपने कभी सुना कि सिंह इकट्ठा रहते हैं? बकरी, भेड़ वगैरह अपनी एक संस्था बनाकर रहते हैं, सिंह नहीं रहते। वे अकेले अकेले रहते हैं। चाहे उनके साथ अपना परिवार भले हो, सिंहनी हो बच्चे भी हों, लेकिन एक सिंह दूसरे सिंह के साथ मिल जुलकर रहे और तीन सिंह भाई भाई की तरह एकत्र होंगे, यह असम्भव है। लेकिन ऐसा असम्भव चित्र अशोक ने बनाया। यह सुझाने के लिए कि अहिंसा तब बनती है, जब प्रेम में जो समुदाय

भावना होती है और सिंह में जो पराक्रम भावना होती है उनका योग होता है। सिंहों की पराक्रम शक्ति और भेड़ों की समूह-शक्ति—इकट्ठा रहने की शक्ति, ये जहाँ एकत्र हो जाती हैं वहाँ अहिंसा पनपती है। हम पराक्रमी हैं और फिर भी एकत्र काम करते हैं। दुर्बल लोग एकत्र हो जाते हैं—क्योंकि वे दुर्बल होते हैं। पराक्रमी लोग एकत्र नहीं होते। अपने पराक्रम के घमण्ड में काम करते रहते हैं। पराक्रम भी हो और एकता की आवश्यकता महसूस करके सबके साथ मिल-जुलकर काम करते हों, तब वह अहिंसा बनती है। इसलिए अहिंसा का एक संकेत चित्र बनाने के विचार से चार सिंहों को एकत्र किया। दरअसल वे चार सिंह हैं। वैसे फोटो में तीन दीखते हैं तीन ओर के लेकिन वे हैं चार। चारों दिशाओं में चार सिंह इकट्ठा हो रहे हैं ऐसा उसने एक चित्र रखा। अब अशोक का जो सिंह का सपना था वह सिद्ध नहीं हुआ, उस जमाने में, विज्ञान-शक्ति के अभाव में। उन दिनों व्यापक प्रचार जल्दी हो ही नहीं सकता था। हम तो साल से भारत में घूम रहे हैं। बुद्ध भगवान् कोई पैंतीस साल घूमे लेकिन हमारा नाम दुनिया जानती है। बुद्ध भगवान् को तो तीन सौ साल बाद जब अशोक हुआ तब लोगों ने जाना। तब तक तो बुद्ध भगवान् को लोगों ने जाना नहीं। ईसामसीह को किसने जाना था? सौ-सवा सौ साल के बाद—डेढ़ सौ साल के बाद—कुछ जानकारी हुई थी। फिर धीरे-धीरे और आज वे दुनिया में व्याप्त हैं। उस जमाने में जब ईसा प्लेस्टाइन में घूमते थे तब तो उसी क्षेत्र में उनकी जानकारी थी। आज प्रचार के अनन्त बड़े साधन हमारे हाथ में हैं। इसलिए कहता हूँ कि एक मौका भारत को मिला है—अहिंसा की सिद्धि करके दुनिया को प्रेम-सन्देश देने का और प्रेम के रास्ते से मसले हल करने की राह दिखाने का। ऐसा मौका, जो पहले कभी मिला नहीं था। अब इस दृष्टि से हम स्वराज्य का उपयोग करना चाहिए न कि उसकी सत्ता के टुकड़े हम बाँट लें। अभी इस तरह हम समझें कि अपना अपना स्वार्थ साधने के लिए एक मौका

मिला है। ऐसा हमें नहीं समझना चाहिए। मगर यह कि हिन्दुस्तान के सामने जो बना मौका उपस्थित है और हिन्दुस्तान का अहिंसा का जो मिशन पूरा करना है उसके लिए आपने यहाँ इतना जो समन्वय साधा, उसमें एक कदम आगे जाकर और एक समन्वय साधने की जरूरत है। वह यह कि भगवान गौतम बुद्ध को भी यहाँ स्थान देना चाहिए। हरि हर को आपने इकट्ठा करके बहुत अच्छा किया। राम कृष्ण को साथ रखा यह बहुत अच्छा किया। हरि हर इकट्ठा करने में आपने अनुराग और वैराग्य को एकत्र किया। राम-कृष्ण को इकट्ठा करके आपने सत्य और प्रेम को इकट्ठा किया। दोनों काम बड़े अच्छे किये। अब सत्य प्रेम के साथ करुणा को जोड़ देना चाहिए।

सत्य प्रेम के साथ करुणा को जोड़ो

गौतम बुद्ध के रूप में हिन्दुस्तान में करुणा अवतीर्ण हुई थी। सारी दुनिया स्वीकार करती है कि कारुण्य अवतार शाक्यमुनि की कुल दुनिया को जरूरत है। उस गौतम बुद्ध को हमको समझना चाहिए मानना चाहिए, कबूल करना चाहिए। इतनी अक्ल हममें होनी चाहिए। समझने की जरूरत है कि गौतम बुद्ध हिन्दू थे और हिन्दी थे। उन्होंने किसी नये धर्म की स्थापना का विचार नहीं किया था। जैसे कबीर ने एक सुधार पेश किया वैसे उन्होंने हिन्दू धर्म में एक सुधारमात्र पेश किया था। उसके बाद धीरे धीरे उसका पंथ बना। पंथ बनाया—पंथ बना यह बाद की बात है। लेकिन वे तो एक उपासना के तौर पर अहिंसा का प्रचार करते थे और दीक्षा देते थे। ऐसे गुरु होते थे, जैसे हिन्दुस्तान में कई गुरु होते हैं। उनके अन्दर अन्दर कई गुरु होते हैं। और वे गुरु अपने अपने विचार की दीक्षा उन शिष्यों को देते हैं जो दीक्षा लेने को तैयार होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि वे उस धर्म के बाहर चले जाते हैं। गौतम बुद्ध हिन्दू ही जन्मे थे, हिन्दू ही मरे थे और हिन्दी थे। ये बातें हम भूलनी नहीं चाहिए और उनका फिर से रिक्लेम करना चाहिए। आजकल लोग रिक्लेमेशन करते हैं। परती जमीन का हम रिक्लेम करते

है। इसी तरह गौतम बुद्ध का चिन्तन करना चाहिए और कहना चाहिए, उन पर दुनिया का अधिकार है। चीन जापान का है इसमें कोई शक नहीं लेकिन हिन्दुस्तान का भी है। हिन्दुस्तान का कुछ अधिक ही है। एक विचारक के नाते तो सारी दुनिया के साथ उनका सम्बन्ध है। परन्तु उनका जन्म भारत भूमि में हुआ था। इस कारण उनके जन्म के साथ जो उनकी वासनाएँ यहाँ भारत में काम करती थीं उनका लाभ भारत को ज्यादा मिल सकता है और मिलना चाहिए। अतएव राम और कृष्ण के साथ बुद्ध का जाप किया जाय यह अच्छा रहेगा। लेकिन यह बिलकुल नया काम हम कर रहे हैं ऐसा नहीं। यह काम भी एक तरह से हमारे पूर्वजों ने कर ही रखा है। क्योंकि राम को एक अवतार कृष्ण को उनके बाद का और बुद्ध को तीसरा अवतार मान ही रखा है।

बुद्धावतार

आजकल हम जितने धार्मिक कार्य करते हैं हिन्दू जितने धार्मिक कार्य करते हैं वह सबके सब 'बुद्धावतारे वैवस्वत मन्वन्तरे'। आज वैवस्वत मन्वन्तर में हम धर्म-कार्य कर रहे हैं, नर्मदा की उत्तर दिशा में कार्य कर रहे हैं। जो दक्षिण में हैं वे नर्मदाया दक्षिणे तीरे कहते हैं। हमारा धर्म-कार्य कहाँ से चलता है वह स्थान दिखाना पड़ता है। नदियों के साथ सम्बन्ध जोड़कर गंगा नदी के उत्तर में कृष्णा नदी के दक्षिण में काम कर रहे हैं ऐसा बताना पड़ता है। संकल्प करना पड़ता है जब कि हम कोई धर्म-कार्य करते हैं। और किस काल में हम कार्य कर रहे हैं? सो बताना पड़ता है 'वैवस्वत मन्वन्तरे'। इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। सातवाँ मनु वैवस्वत। चौदह मनु हैं। छह मनु हो गये, सातवाँ चल रहा है। सात और होंगे। कुल मिलाकर लगभग चार सौ करोड़ साल हो जाते हैं। जो पुराणों का इतिहास है वह सात मन्वन्तर का काल याने दो करोड़ साल का। पौराणिकों ने अन्दाज लगाया कि पृथ्वी को बने दो सौ करोड़ साल हो गये। और मुझे कहते हुए खुशी होती है कि यह एक इत्तिफाक है कि वैज्ञानिक भी मानते हैं कि पृथ्वी की उत्पत्ति

का करीब दो सौ करोड साल हुए हैं। पुराण के अनुसार पृथ्वी का ह्रास होने में और दो सौ करोड वर्ष लगेंगे। दो सौ करोड साल में पृथ्वी लय होगा यह अभी विज्ञान बोल नहीं रहा है। वह इतना ही बोलता कि पृथ्वी को बने हुए दो सौ करोड साल हो गये। पर हिंदुओं की कल्पना यह है कि पृथ्वी को बने दो सौ करोड साल हो गये हैं, करीब दो सौ करोड साल पृथ्वी और रहेगी। और इसके बाद पृथ्वी का प्रलय होगा, ऐसा उन्होंने माना है। चौदह मन्वन्तर मान लिये और उसमें से सातवाँ मन्वन्तर इस समय चल रहा है। इसलिए हम मन्वन्तर में हम यह धर्म-कार्य कर रहे हैं ऐसा कहा जाता है। किस विचार के मातहत हम काम कर रहे हैं? जैसे हम कहते हैं सर्व-सेवा-संघ के मातहत करते हैं भारत सेवक समाज के मातहत करते हैं उसी तरह धर्म-कार्य में किस विचार के मातहत काम करते हैं, यह बताना पडता है। तो बताया जाता है बुद्धावतारे। हिंदुओं के धर्म-कार्य हम जो भी धर्म-कार्य करते हैं श्राद्ध का काय हो दान का काय हो लोग क्या बोलते हैं? बुद्धावतारे। बुद्ध के अवतार में हम काम कर रहे हैं। याने बुद्धावतार अभी चल रहा है। उसके मातहत हम काम कर रहे हैं। तो यह बात भी हमारे पूर्वजों ने समझ ली थी और काफी कशमकश के बाद समझ ली थी। जैसे हरि-हर की कशमकश हुई थी शैव और वैष्णवों की बात में समन्वय हुआ जैसे राम-कृष्ण की कशमकश हुई था बाद में समन्वय हुआ वैसे ही बौद्ध विचार की और वैदिक विचार की कशमकश हुई थी और कुछ समन्वय कर लिया लेकिन पूरा समन्वय उनका नहीं हुआ। जब हरि-हर का पूरा समन्वय हो चुका, राम कृष्ण का पूरा समन्वय हो चुका वैसे वैदिक और बौद्ध विचार का पूरा समन्वय नहीं हुआ। कुछ किया। गौतम बुद्ध को अवतार मानकर मान्य कर लिया। और जो करना बाकी रहा है वह आप अगर कर देते हैं और गौतम बुद्ध की एक मूर्ति यहाँ खडी कर देते हैं और यह समन्वय हो जाता है तो सत्य-प्रेम-करुणा तीनों का समागम होगा।

सब धर्मों का सार—सत्य प्रेम करुणा

हम प्रार्थना में अक्सर कहते हैं—भगवान् से प्रार्थना करते हैं। हमने रिवाज डाला है। पाँच-छह साल से चुके। प्रार्थना में हम भगवान् से 'सत्य प्रेम और करुणा' की माँग करते हैं। ये तीन अवतार एक के बाद एक भारत में हुए। राम कृष्ण बुद्ध—सत्य प्रेम करुणा। और यही सत्य, प्रेम करुणा सब धर्मों का सार है। सिर्फ भारत का नहीं। सत्य निष्ठा उपनिषद् का विषय है जनों का सत्यनिष्ठा ही प्रमाण है। करुणा का विचार इस्लाम में और भक्ति-मार्ग में प्रधान होता है। रहमानुर्रहीम कहते ही है। प्रेम का विचार कुछ भक्ति-मार्गों में और ईसाइयों में प्रधान है, जहाँ व God is Love कहते हैं। इस तरह सत्य प्रेम करुणा में दुनिया के सब धर्मों का सार आ जाता है। सत्य प्रेम करुणा कहने में हिन्दुस्तान के इतिहास का सार आता है। इस तरह भारतीय इतिहास का सार और दुनियाभर के सब धर्मों का सार मिलकर ये तीन गुण बनते हैं—सत्य प्रेम और करुणा। भगवान् में तो अनन्त गुण हैं। फिर भी इन तीन गुणों का आवाहन हम करते हैं ताकि हमारा भला हो।

गीता का स्वाद

अब गीता के विषय में ना कहूँ। यों तो ऐसा दिलचस्प विषय अक्सर बोल रहा हूँ कि यदि बोलूंगा, तो भी मुझे थकान नहीं आयेगी। गीता बड़ा विचित्र ग्रंथ है विलक्षण ग्रंथ है। हर ग्रंथ का एक कवच होता है। जैसे बाद में फल छिलके बिना निकलता नहीं कुछ न कुछ छिलका होता है। बाहर की हवा का खराब असर उस पर न हो इसलिए बचाव के लिए एक छिलका होता है। वैसे धर्म-ग्रंथ पर एक छिलका हुआ करता है। जब केले का छिलका उतारकर अन्दर का ला लेते हैं वैसे ही धर्म पर का छिलका धर्म-ग्रंथ पर का छिलका उतारना पड़ता है और अन्दर का खाना पड़ता है। गीता पर जो छिलका है वह बहुत कठिन और सख्त है नारियल जैसा है। गीता ग्रंथ नारियल के समान है। उसके ऊपर का

छिलका ज्यादा कड़ा कठिन है। अगर बन्दर के हाथ पड़ जाय तो वे क्या करेंगे? उनको पता ही नहीं चलेगा कि अन्दर क्या है। जो उसका छीलना जानेगा उसे पता चलेगा कि अन्दर सार-गर्भ वस्तु भरी है। ऊपर का ही देखेंगे तो क्या सिर पर पटकेंगे उसको? क्या करेंगे वे नारियल को लेकर? अब गीता का जो ऊपरी छिलका है, उसमें युद्ध की समस्या खड़ी कर दी है और आमने-सामने भाई-भाई खड़े हैं, युद्ध लड़ रहे हैं और अर्जुन है, जो लड़ने से नाश का रण है, पराङ्मुख हो रहा है। आत्मा की अमरता, देह की तुच्छता, योग, बुद्धि, भक्ति, ध्यानयोग, त्रिगुणातीत होने की वृत्ति और लेन-देन का पूरा कराना आदि पचास बातें उनके पीछे लगाकर सारा तत्त्वज्ञान कहकर भगवान् उसको युद्ध में प्रवृत्त कर रहे हैं। अजीब सी बात है कि एक भौतिक युद्ध में और जहाँ भाई-भाई लड़ रहे हैं, ऐसे युद्ध में यह ग्रन्थ प्रेरणा दे रहा है। इसलिए इस ग्रन्थ के ऊपर के छिलके के कारण बहुत लोग बहक गये। नारियल के अन्दर की चीज को जो न जाने, उसे तो पता नहीं नारियल का क्या समझ बैठेगा? इसी तरह हुआ भी है। इसी तरह अनार्किस्टों ने गीता का उपयोग किया। गीता के नाम से महात्मा गांधी काम करते थे और इसी गीता के नाम से हत्यारे ने महात्मा गांधी पर गोली चलायी थी। अभिमानी और प्रेमी दोनों ही गीता के आश्रय होते हैं। यह सारा इसलिए होता है कि गीता के ऊपर का छिलका बहुत सख्त बहुत मजबूत है। उसे दूर करने में बड़ा परिश्रम होता है। जो उतारना नहीं जानता, वह दांतों से तोड़ने लगता है। उसको दूसरा ही स्वाद आता है और कहता है कि गीता का तो 'यह' स्वाद है। लेकिन गीता का असली स्वाद तो ऊपर का छिलका हटाने पर ही आता है।

इन्दौर —गीता भवन में

११-८-६०

: ६

एकचित्त, समानचित्त और सहचित्त

व्यक्तिगत, सामाजिक और आध्यात्मिक

'सहचित्त', 'एकचित्त' और 'समान चित्त' ये तीन पारिभाषिक शब्द हैं। 'एकचित्त' प्रलय का लक्षण है और ऐसा प्रलय सम्भव हो सकता है। 'समान चित्त' समान-वातावरण बनाने में मददगार हो सकता है पर 'सहचित्त' वह शब्द है जिसमें एक-दूसरे के सामने एक-दूसरे के दिल खुल जाते हैं। साधना में एकचित्त व्यक्तिगत है। हर मनुष्य को थोड़े समय के लिए प्रलयावस्था में जाना चाहिए, लीन होना चाहिए—अपने में लीन। सब प्रकार के विचारों के मूल में जिस स्रोत से वे विचार निकलते हैं उसमें पहुँचने का मौका मिलता है। निद्रा में शून्यता आती है। जहाँ सबका एकचित्त होता है वहाँ सामाजिक प्रलय होता है। अगर किसी अच्छे काम में सबका एकचित्त बनेगा तो सबको मुक्ति मिलेगी। अगर किसी मामूली काम में भौतिक दृष्टि से एकचित्त होगा तो प्रलय होगा। धार्मिक दृष्टि से एकचित्त होगा तो मुक्ति मिलेगी। अन्यथा प्रलय होगा। व्यक्तिगत तौर पर एकचित्त हम कर सकते हैं उसीको एकाग्र चित्त कहते हैं। चित्त के अनेक पहलू और कल्पनाएँ हैं। एक कल्पना को पकड़ने से उससे जो शान्ति और शक्ति मिलती है उससे समान चित्त बनने में मदद मिलती है। सामाजिक काम के लिए उसका बहुत उपयोग नहीं होगा। आध्यात्मिक काम के लिए व्यक्ति को सहचित्त की आवश्यकता है। उसमें पूरा दिल एक-दूसरे के सामने खोल सकते हैं। जैसे आकाश में हम बिलकुल खुले हो सकते हैं वैसे ही इसमें होगा। जैसे सृष्टि खुली है, नग्नरूपेण हमारे सामने है वैसे ही हमारा दिल खुला होगा तो सहचित्त बनने में मदद होगी।

संसार में सहचित्त दुर्लभ

सहचित्त से आध्यात्मिक लाभ भी है। मनुष्य अपने गुण-दोषों के साथ सृष्टि के सामने खुला है। यह मामूली बात नहीं है। इसी तरह साधक लोग कामन ग्राउंड पर आयें और सहचित्त बनायें। उससे गुणों का संकलन होगा। गुणों का योग होगा और दोष निरसन के लिए मदद होगी। जहाँ यह क्रिया नहीं होती वहाँ साधक-वर्ग का सहचित्त नहीं होता और वहाँ अभिप्राय अलग अलग देते हैं ऊपर ऊपर के स्तर से होते हैं। चित्त के स्तर में जाने पर तरह में वे नहीं पहुँचते। बाहरी दुनिया के साथ हो व होते हैं। चित्त में अनेक स्तर होते हैं। बिलकुल ऊपर के स्तर में ओपीनियन यानी अभिप्राय होते हैं। अभिप्राय के लिए दलीलें पेश करते हैं। कभी-कभी वे दलीलें हमें नहीं जँचती हैं तो कामन ग्राउंड नहीं रहता है। उससे सहचित्त बनने में मदद नहीं मिलती। लेकिन यह सारा चित्त के ऊपरी स्तर में होता है। यह सारी हलचल चित्त के ऊपर ऊपर के स्तर में होती है। अन्तस्तल में जहाँ गूढ़तम भावना होती है वहाँ से मनी होता। सहचित्त में मनुष्य जीवन की गूढ़तम भावना को दूसरों के सामने रखता है। यही चीज संसार में दुर्लभ है परमार्थ में भी दुर्लभ है। संसार में परिवार में माता पिता बहनें वर्षों तक साथ रहते हैं, पति-पत्नी भी जीवनभर साथ रहते हैं लेकिन उनका सहचित्त नहीं बन पाता। ऊपर ऊपर के स्तर में एकता होती है पर अन्दर के गूढ़भाव में एकता नहीं हो पाती। वहाँ संशय भी पड़ा है शंका भी पड़ी है। पता नहीं कि उसके दिल में क्या है—इस तरह उलट-पुलट भावनाएँ मनुष्य करता है। प्रेम है इसलिए व्यवस्था तो बनती है लेकिन सहचित्त नहीं है। जैसे पार्वती परमेश्वर एक है और चित्रकार ने अर्धनारीनटेश्वर का चित्र बनाया है उसमें हम देखते हैं कि दोनों पति-पत्नी एकरूप हैं उनका दिल, हृदय एक ही है। बाकी में अवयव अलग अलग हैं। ऐसी मिसालें हजार में एकाध हो सकता है। इसलिए मैंने कहा कि संसार में सहचित्त दुर्लभ है।

चित्त के स्तर

पारमार्थिक क्षेत्र में भी सहचित्त दुर्लभ है। क्योंकि साधक ऊपर ऊपर के स्तर में एक होते हैं। ऊपर ऊपर के क्षेत्र में अभिप्राय होते हैं और नीचे के क्षेत्र में विचार होते हैं। अभिप्राय और विचार अलग अलग हैं। साथ उसके नीचे के स्तर में विचार होते हैं। उसीसे वाद बनते हैं। और वे वाद चित्त के ऊपरी छिलके में होते हैं। उसमें साधक रहते हैं। जिस शक्ति के परिणामस्वरूप चित्त में लहरें उठती हैं उसे विचार कहते हैं। विचार का स्तर ऊपर का है। उसके नीचे विचार का स्तर है। उसके भी नीचे भाव-स्तर है। उस स्तर पर भी साधक एक नहीं होते। वे विचार की चर्चा करते रहते हैं भावभ्रम की चर्चा करते हैं। यह सारा कार्य ऊपर के स्तर में होता है। मैंने कहा कि नीचे के स्तर में एक होते हैं लेकिन उसके भी नीचे एक स्तर है जिसे अभाव कहते हैं। वहाँ मनुष्य आत्मा की भूमिका में आता है। फिर विचार और विचार का वाद नहीं रहता। इसलिए मनु ने लिखा। याने सत् मात्र। उपासना बनी है धारणा। मैंने उस अभाव शब्द का आज लोगों में यह भावना फैल रही कि शायद शब्द में कुछ फर्क किया है लेकिन मेरा मतलब था कि वहाँ मनुष्य आत्मा की भूमिका में आता है। इसलिए मैंने उस अभाव कहा। भाव के स्तर पर सहचित्त कभी नहीं होगा। चर्चा होगी। विचार क्षेत्र में भी सहचित्त नहीं होता। निर्विचार का क्षेत्र ही है। उसमें हम सभी पहुँचते हैं। परिणामस्वरूप मनुष्य का शुद्ध आशय प्रत्यक्ष रह जाता है मालूम नहीं होता। परिस्थिति अपने-अपने काम में मग्न होते हैं। एक संस्था एक ग्रुप या एक सोसाइटी होता है। उसमें वसु-गोत्र धर्म है। वे सब मिलकर बाह्य कार्यक्रम की चर्चा करेंगे। मिल-जुलकर बहुत कुछ विचार करेंगे लेकिन भाव की चर्चा नहीं करेंगे। इस कारण दूर या दूर रह जाता है। और जो दूर रहता है उसे मनुष्य गुण या कार्यक्रम, न्याय नियम मानता। हमें गुण के भाव का गुण पहचानना नहीं है। या पहचान है तो मान्य न। पर इसके भी अनेक कारणों से व्यक्त करता नहीं।

चाहते। एक व्यक्ति दो-तीन दुरावे अपना बनाकर रहता है। सार होता यह है कि सम्यक्-दर्शन नहीं होता।

भाव प्रकाशन

जिसे हम ओपन बुक (खुली किताब) कहते हैं, वह हमारे लिए ओपन तो है फिर भी वह पूरा खुलती नहीं है। कुछ ऐसी भाषा है कि वह मेरे लिए समझना मुश्किल है इसलिए किताब है ओपन है लेकिन अन्दर की भाषा नहीं समझता हूँ। वैसे ही ओपन बुक जैसे रहनेवाले आदमी के अन्दर में कुछ भाव पड़े हैं व मैं नहीं समझ सकता हूँ। भाव प्रकाशन की कोशिश दुनिया में होती है, फिर भी भाव का पूरा प्रकाशन होता ही है यह नहीं मानना चाहिए। कई गुप्तताएँ लोगों को रखनी पड़ती हैं। कोई राजनैतिक होते हैं उनके पास कुछ ऐसी गुप्तताएं रहती हैं, जिनकी पुड़िया बाँध-बाँधकर वे अपने पास रखते हैं। लेकिन जो साथी होते हैं उनके पास ऐसी ऐसी गुप्तताएँ क्या होनी चाहिए? उनका आपसी सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए कि वे एक-दूसरे के पास अपना गुह्य खोलते हैं जीवन का गोपनीय अंश प्रकट करते हैं। अगर ऐसा होता है तो उसे भाव-प्रकाशन को मदद मिलेगी। वह चीज दूसरे के सामने प्रकट न कर सकते हो इसलिए पुड़िया बाँधी है उसे भी भूलना नहीं है। क्योंकि उसकी जिम्मेवारी हम पर है इसलिए याद भी रखना है और दूसरे के सामने प्रकट भी नहीं करना है। ऐसी हालत में भाव प्रकाशन पूरा होता होगा, फिर भी कहीं-कहीं वह पूरा नहीं होता है। इसलिए जिनका भाव पूरा प्रकाशित हुआ होगा ऐसा मनुष्य दुनिया में अगर हो तो वह कुल दुनिया का प्यारा होगा। गीता में आता है कि लोग जिस पर पूरा भरोसा करते हैं और जिसके लिए किसी को भी अरुचि नहीं होती और उसे भी लोगों के लिए अरुचि नहीं है, वह लोगों के साथ एकाग्र हो गया है। लोग और वह मनुष्य एकात्म हो गये हैं।

शुकदेव का सम्पूर्ण भाव खुला था

भागवत में कथा है कि शुकदेव नग्न घूमा करते थे। स्त्रियाँ उन्हें

दिखती थी, लेकिन उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं प्रतीत होता था। जैसे बच्चा घूमता है वैसे ही वे घूमते थे। कहा गया है कि एक जगह स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। वे सब पानी में थीं, नग्न थीं। उसी रास्ते से व्यास भगवान् जा रहे थे। वे कपड़े पहने हुए थे, तो भी स्त्रियों को संकोच हुआ और शुकदेव उस रास्ते से गये तो संकोच नहीं हुआ। भावार्थ यह कि शुकदेव के सम्पूर्ण भाव स्त्रियों के सामने खुले थे जैसे मासूम बच्चे हैं। उनका जो भी भाव होता है, वह सबके सामने पूरा खुला होता है। ऐसी ही स्थिति शुकदेव की थी।

भावों की पुड़िया न बाँधें

जिस मनुष्य का भाव इस तरह दुनिया के सामने खुला है वह ज्ञानपूर्ण न होने के कारण चाहे विश्वात्मा न बनता हो पर उसके मन में किसी प्रकार का संकोच नहीं है। जो कुछ है, खुला है। वह ज्यादा तो नहीं है फिर भी जितना है उतना पूरा खुला है। उपनिषद् में कहा गया है कि जैसे बालक का मन होता है वैसे ही जिसका निष्पाप मन होता है उसके लिए हरएक के मन में प्यार होता है। अगर आँख न हो तो मनुष्य अंधा होगा। कान काम न करते हों तो बहरा होगा। लेकिन इन सबके बिना मनुष्य का चलता है, प्राण के बिना नहीं चलेगा। मन के बिना भी चलता है, जैसे बालक। वे अ-मन होते हैं। उनके पास मन ही नहीं है। इसलिए बालक व्यवहार नहीं जानते हैं, ऐसा मानस-शास्त्री कहते हैं। सूक्ष्मरूपेण बच्चों के मन थोड़ा काम करते होंगे, फिर भी कुल मिलाकर उनके पास मन नहीं है। वे मनो-रहित होते हैं। यह ठीक है या बेठीक नहीं यह समझें लेकिन जानने की बात है। कहते हैं कि बाद में, जैसे-जैसे बालक की उम्र बढ़ती है, वैसे-वैसे मन उठता होगा। लेकिन जो कुछ उनके पास है, वह खुला है। इसे तो प्रमाण मानना ही होगा। गांधीजी कहा करते थे कि अपने चित्त में पुड़िया मत बाँधिये और उन्होंने दुनिया के सामने अपना सारा चित्त खोलकर रखा था। ऐसी उन्होंने कोशिश की। मैंने दूसरे-तीसरे ऐसे कई साधक देखे हैं जो अपने चित्त में पुड़िया रखते हैं।

आरम्भ खुद से हो

सहचित्त में हमारे दिल के जो मनोभाव हैं, वे साथियों के सामने खुल जायें, भले ही साथी के न खुलें। आरम्भ में यह होगा कि हमारे भाव उनके पास खुलते हैं, इस कारण सम्भव है कि उनके भी खुलेंगे। उनके भाव मेरे पास खुलेंगे, तभी मेरे भाव उनके पास खुलेंगे, ऐसा नहीं होना चाहिए। कुल सृष्टि के साथ हमारे भाव खुले हों, तो बहुत बड़ी बात होगी। लेकिन कम-से-कम अपने साथी के पास तो खुलने ही चाहिए। यह नहीं कहना चाहिए कि मेरे दिल का भाव तो मैं तब खोलूंगा जब उसका खुलेगा और वह नहीं खोलता है, तो मैं भी नहीं खोलूंगा। जैसे डिस्आर्मामेण्ट की बात होती है कि पहले सामनेवाला डिसआर्मामेण्ट करेगा, तभी हम करेंगे। इस प्रकार से दिल नहीं खुलता। आरम्भ अपने से करना चाहिए। साधु-पुरुष अपने से ही आरम्भ करते हैं और सृष्टि के सामने उनके भाव खुले रहते हैं। हमारे भाव कम-से-कम साथी के सामने तो खुलने ही चाहिए।

इन्दौर —कार्यकर्ता-वर्ग में

११-८-'६०

[illegible] है [illegible] हुआ था। [illegible] कि पानी के [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible]। मैं [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] मुझे [illegible]। मैं [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] मुझे [illegible] थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] मुझे [illegible] [illegible]। मैं [illegible] था, [illegible] था। [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] हो जाता है [illegible] श्रद्धा [illegible] और [illegible] थे [illegible] मुझ [illegible]। [illegible] कि मैं [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] है। मैं [illegible] कि [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] है [illegible] है। लेकिन यह बात निश्चित है कि मैं [illegible] भूल जाता। [illegible] में उसका गुरु [illegible] था, [illegible] थे, [illegible] मालूम होता था [illegible] बिना [illegible] [illegible]। सब पर श्रद्धा का [illegible] है इसमें बुद्धि का [illegible] है। जितनी [illegible] मनुष्य में होती है उतनी श्रद्धा [illegible] होती है। जितनी आत्म-शक्ति उतनी श्रद्धा-शक्ति जागृत होती है।

श्रद्धा एक शक्ति

[illegible] बड़ी शक्ति है। इसलिए श्रद्धा कभी-कभी पहाड़ [illegible] को उठाता है। लेकिन [illegible]। कभी यह [illegible] और [illegible] है। [illegible] का काम। [illegible] ने जो काम किया, वह बिना श्रद्धा के हो

अलग है। जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ अपने पर जब्त रखने की और कर्म करने की शक्ति प्राप्त होती है। कभी कभी सेवा करने की शक्ति श्रद्धा के साथ आती है। सम्भव है कि वहाँ बुद्धि का रास्ता न हो या बुद्धि को वह ज्ञान जचती न हो। बुद्धि यह निर्णय करती है कि रास्ता ठीक है या नहीं। परन्तु दोनों में विरोध नहीं है दोनों परस्पर पूरक हो सकते हैं। लेकिन हम दोनों मानिरुद्ध। अमुक मनुष्य में बुद्धि ज्यादा है और श्रद्धा कम है अथवा श्रद्धा ज्यादा है और बुद्धि कम है यह कहना ऐसा ही होगा कि इसके कान बड़े तेज है लेकिन आँख उतनी तेज नहीं है, कमजोर है। जैसे आँख और कान के विषय अलग हैं वैसे श्रद्धा और बुद्धि के विषय अलग अलग हैं यह साफ है। लेकिन यह ध्यान में नहीं आता। ये लोग कहते हैं कि देहातवाले में श्रद्धा ज्यादा होती है वे ज्यादा सोचेंगे नहीं तथा शहरों में बुद्धिमान लोग ज्यादा हैं लेकिन वहाँ श्रद्धा की कमी है। इसमें यह सूचित किया कि ये बुद्धिमान हैं यानी वे हमेशा विरोध करते होंगे। ऐसा मान ही लिया। वास्तव में इसका कोई ताल्लुक नहीं है। दोनों जैसे बिलकुल भिन्न यन्त्र हों दोनों के भिन्न फलत हों।

प्राण-शक्ति और श्रद्धा शक्ति

बचपन में मेरे दादा चान्द्रायण का व्रत करते थे। चन्द्रमा रोज दो-चार मिनट देरी से ही उगता है। कभी चन्द्रमा रात में होता है और दिन में भी होता है चौबीस घंटे हुआ करता है। लेकिन रात में दीखता है। उसकी कला जैसे-जैसे घटती थी वैसे वैसे मेरे दादा का खाना कम होता था। और वे एक ही दफा खाना खाते थे। एक कौर खाते थे और वह कम-बेशी होता था जैसे चन्द्र की कला घटती-बढ़ती थी। पूर्णिमा के रोज वे पन्द्रह कौर खाते थे और अमावस्या के रोज शून्य। यानी एक फाका तो पूरा होता था और उनका खाना अनियमित होता था। लेकिन चन्द्र के साथ नियमितता थी। मतलब, चन्द्रमा रोज अपने उदय का समय बदलता था। आज कौन-सी तिथि है यह हम दादा के

है। भगवान् को याद करके हमारा दिल भर आता है, तो ऐसी प्रार्थना का आध्यात्मिक असर होगा ही। लेकिन प्रार्थना यन्त्रवत् होगी तो उसका असर नहीं होगा। इसलिए ये सारी श्रद्धाएँ बुद्धि के साथ जुड़ सकती हैं। एक भाई ने कहा कि प्रार्थना में ऐसा महसूस होता है कि हम यन्त्रवत् श्लोक बोलते हैं। रोज बोलते हैं, वही बोलते हैं। जब एक ही शब्द में हम रोज बोलते हैं, तो बिना अवधान के भी बोल सकते हैं। कभी-कभी मन-गीत भी बोल सकते हैं जैसे प्रार्थना में गाते-गाते की रफ्तार बदल जाते हैं। इसलिए प्रार्थना में रोज के लिए नये-नये भजन होने चाहिए और अलग-अलग प्रार्थनाएँ होनी चाहिए। और उसमें अगर संयम हो सकता है तो अच्छा है। मैंने इसमें दलील की। अब यह दलील का विषय नहीं है। लेकिन जहाँ चर्चा चलती है, वहाँ मैं ख्याल करता हूँ। रोजमर्रा खाने के आइटेम्स जो बदलते हैं तो खाना अच्छा लगता है लेकिन सभी आइटेम्स रोज नहीं बदलते हैं। जो मुख्य आइटेम्स हैं वे रोज रहते हैं और दूसरे कुछ आइटेम्स रोज बदलते हैं। मतलब दाल रोटी कायम रहती है, तरकारी बदला करती है। इस तरह कुछ आइटेम्स रोज बदलते हैं और कुछ कायम रहते हैं। वैसे ही भजन में कुछ चीजें ऐसी हों जो रोज हम बोलें और कुछ ऐसी हों जो नित्य बदलें।

जिन लोगों पर हमारी श्रद्धा होती है, उनकी बातों का हमारे चित्त पर असर होता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी बातें मानना मुश्किल होता है। यह श्रद्धा हम कहाँ रखें? श्रद्धा कर्म-शक्ति है। अगर श्रद्धा न रखते हैं तो कर्म-शक्ति क्षीण होती है और गलत श्रद्धा से पाप उत्पन्न होता है। इसलिए श्रद्धा होनी चाहिए और वास्तविक होनी चाहिए। बुद्धि होनी चाहिए, नहीं तो दिशा नहीं सूझेगी। आनन्द ने व्याख्यान लिखा है। उसमें लिखा है कि सड़क पर निशान से अमुक मील दूर जाना है। अब कहो, अगर वह लिखा हो तो दिशा मालूम नहीं होगी। पर यह इत्मीनान नहीं होता। वहाँ सभी सड़कों को दिखाने के लिए बोर्ड लगाए गए हैं। दो तरफ सड़कें जाती हैं तो कुछ ...

किया, ऐसा नहीं कह सकते। उसकी एक अजीब श्रद्धा थी। यहाँ तक कि उसने अपने देश को सलाह दी—जो देश मांसाहारी था उस देश को सलाह दी—कि गो-मांस खाना बन्द कर दो। यह गाय और बैल के प्रेम के लिए नहीं, टिन के डब्बे बाहर से आते थे इसलिए। युद्ध के समय उसे बन्द करना ही उसको ठीक लगा। यह सब श्रद्धा कराती है। मेरे दादा की श्रद्धा और हिटलर की श्रद्धा दोनों श्रद्धा ही है। अगर उसके साथ बुद्धि हो, तो वह गलत दिशा में काम नहीं करेगी लेकिन बुद्धि हो और श्रद्धा न हो, तो काम नहीं बनेगा। इसलिए श्रद्धा एक स्वतन्त्र शक्ति है।

श्रद्धा और बुद्धि का मेल

जब मैं आश्रम में था तब सोचता था कि हम लोग प्रार्थना करते हों और नजदीक के कमरे में एक रोगी सो रहा हो तो हमारा जोर-जोर से प्रार्थना करना कहाँ तक ठीक होगा? मेरे दादा के मन में ऐसी बात नहीं आती थी इसलिए मुझे सोते हुए को वे जगाते थे लेकिन मेरे मन में यह बात आती थी कि रोगी की निद्रा में खलल पहुँचाना कहाँ तक उचित है? यह ठीक है कि उसे तकलीफ तो होगी, लेकिन मुमकिन है कि इस प्रार्थना से उसका healing भी हो जायगा। यानी यह उसके लिए अनुकूल भी हो, लेकिन मैं यह सोचता था कि शायद उसे तकलीफ होती है, तो क्या करना चाहिए? जो रैशनेलिस्ट बुद्धि है, वह ऐसा सोचती है फिर भी प्रार्थना में आध्यात्मिक मजा है ही। तो मैं सोचता हूँ कि नजदीक अगर बीमार है तो वह प्रार्थना की आवाज से उठेगा। मेरी प्रार्थना में श्रद्धा है, तो उसे भी होना ही चाहिए यह मैं नहीं कह सकता। अगर प्रार्थना में उसकी श्रद्धा है तो उसको उससे मदद मिलेगी। अब इस पर दो मत हो सकते हैं। लेकिन श्रद्धा और यह विचार दोनों मूक प्रार्थना में नहीं हो सकते। हमें देखना है रोगी को तो हम यह कह सकते हैं कि शान्त, मौन रखकर बैठें और मौन प्रार्थना करें। यह आवश्यक नहीं है कि उस मौन प्रार्थना का भी असर उस पर हो। श्रद्धा से अगर हम ऐसी प्रार्थना करते हैं तो जरूर उसका असर होगा। मौन में बैठे हैं शून्य ध्यान लगा है तो अगर पन्ना

इसलिए ध्यान जरूरत है शुद्धि की। भावना जमाऊ होती है जिसके पास एक विचार और श्रद्धा है। इसलिए आपके लिए कोई तकरार नहीं होगी। नए नए विचार आप अपनाते जायेंगे और श्रद्धा तो आपके पास है इसलिए बुद्धि बढ़ाने का कार्यक्रम यानी ज्ञान मनन का कार्यक्रम आपको लेना होगा। जो कुछ आपके पास है वह शुद्ध स्वरूप में है, उसका आदर होना चाहिए। जिनके पास विचार और श्रद्धा दोनों नहीं है, उनको दोनों के लिए कार्यक्रम करना चाहिए। वह कैसे होगा यह व देख लेंगे। श्रद्धा चमत्कार है तो उसे बढ़ाना होगा। प्राण-शक्ति मजबूत होना चाहिए। विचार और चिन्तन करें। विचार करते हैं तो चिन्तन करना चाहिए। दोनों हैं कुछ हैं कुछ बनाना है। और कुछ आप बढ़ाते भी हैं लेकिन सबसे मुख्य चीज जीवन-शुद्धि की है। जीवन शुद्ध हो तभी इन दोनों का सम्यक् उपयोग होगा।

प्राण शक्ति क्या है?

किसीने सवाल पूछा है प्राण शक्ति यानी क्या? बड़ा पेचीदा सवाल है। शास्त्र में तो कहा है न वायु प्राण यानी वायु नहीं और प्राण यानी क्रिया भी नहीं। तो प्राण यानी क्या? एक अन्दर का सत्त्व है। वैद्यकीय परिभाषा में कहते हैं कि दवा देने पर भी शरीर में सत्त्व नहीं रहा और जीवन की रस्सी टूट गया। तो सत्त्व का अर्थ यहाँ प्राण ही होगा। चिन्तन की प्रेरणा भी एक सत्त्व है और प्राण शक्ति ऐसी है कि वह मनुष्य से हर काम कराती है। मनुष्य बीमार पड़ा तो कुछ भी काम करने की प्रेरणा उसके पास कम है। यानी उसमें प्राण कम है। मतलब प्राण एक ऐसी शक्ति है जिसके आधार पर जीवन खड़ा है। मनुष्य मायूस होता है। जीना नहीं चाहता है उसमें किसी चीज की इच्छा नहीं है, वह सारी इच्छाएँ प्राण के साथ जुड़ी हैं। बहुतों में जीवन जीने की इच्छा होती है तो इसके साथ उसका प्राण भी प्रबल है। प्राणायाम से शरीर की शुद्धि होती है। शरीर निरोग बनता है। उससे कुछ मानसिक शुद्धि होती है कुछ बौद्धिक शुद्धि भी होती है। उससे जीवन ऊँचा चढ़ाने की भी दान है। क्योंकि आरोग्य विद्या प्राप्त होती है। उत्साह वीर्य ब्रह्मचर्य

कर्म-शक्ति पड़ी है, लेकिन वह शक्ति इतनी नहीं है। मतलब, किया मालूम नहीं होती है, क्योंकि उस कर्म-शक्ति का उपयोग नहीं है। जैसे बच्चों के पास बुद्धि नहीं है, श्रद्धा भरी है। पर वह काम नहीं कर सकता। क्योंकि उसके पास बुद्धि नहीं है। मशीन में शक्ति भरी पड़ी है, लेकिन चलानेवाला न हो तो मशीन अपनी जगह पर पड़ी है। इसलिए श्रद्धा है तो बुद्धि होनी चाहिए। श्रद्धा से गलत काम होगा, तो बुद्धि उसे बचायेगी। इसलिए बुद्धि जरूरी है। अगर सिर्फ बुद्धि है और श्रद्धा नहीं है, तो काम नहीं होगा। अतएव बुद्धि के साथ श्रद्धा जरूरी है।

मूल वस्तु : जीवन शुद्धि

तीसरी बात यह है कि श्रद्धा, बुद्धि के साथ शुद्धि भी चाहिए। श्रद्धा-शक्ति बढ़ाने का कार्यक्रम और बुद्धि-शक्ति बढ़ाने का कार्यक्रम, दोनों हों और दोनों को शुद्ध बनाने के लिए और एक कार्यक्रम होना चाहिए। इसलिए साधना हमेशा त्रिविध होती है। उसमें से एक कर्म-शक्ति है, दूसरी योग-शक्ति है और तीसरी ज्ञान-शक्ति है। इस तरह ये शक्तियाँ जीवन में काम करती हैं—ज्ञान-शक्ति, कर्म-शक्ति और योग-शक्ति—गीता एक ही है। लोग कहते हैं इन तीनों के मार्ग अलग-अलग हैं। कहीं ज्ञान प्रधान होता है, कहीं भक्ति प्रधान होती है और कहीं योग प्रधान होता है, लेकिन मार्ग एक ही है। तीनों की जरूरत है और तीनों शुद्ध होने चाहिए। याने श्रद्धा, ज्ञान की शुद्धि होनी चाहिए। शुद्धि श्रद्धा के लिए भी जरूरी है और ज्ञान के लिए भी। अगर श्रद्धा न हो, तो बुद्धि कौन स्वीकार करेगा? श्रद्धा से ही केवल कोई काम नहीं करेगा। पर श्रद्धा के बिना बुद्धि और योग काम नहीं करते हैं। वे ऐसे ही पड़े रहेंगे। मतलब तीनों का तीनों के लिए होना जरूरी है। तीनों अपने लिए जरूरी हैं, इसलिए तीनों को साथ ही अपनाना होगा और त्रिविध साधना करनी होगी। इनमें से जो नहीं है उसकी ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। श्रद्धा की बुनियाद आपके पास है तो ज्ञान के लिए आपको कोशिश करनी होगी, ऐसा कार्यक्रम आपको बनाना पड़ेगा। श्रद्धा के बिना कोई कार्यक्रम योग्य भी नहीं बन सकता।

११.

प्रज्ञा-प्राप्ति

प्रज्ञा

भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न भिन्न गुणों की मनुष्य को चाह होती है। कभी करुणा की विशेष आवश्यकता मालूम होती है, अब साम्य की आवश्यकता मालूम हो रही है। कभी निर्भयता की, कभी ज्ञान-निष्ठा की आवश्यकता मालूम होती है। इस तरह भिन्न भिन्न युगों में गुणों की आवश्यकताएं अलग-अलग रहीं और जिस जिस युग में जिस जिस गुण की आवश्यकता थी उस गुण की प्रेरणा मनुष्य को ज्यादा-से-ज्यादा थी। लेकिन सतत मूल में बुनियादी चीज है, हर युग में और खासकर इस युग में निर्णय-शक्ति की जिसकी हमें सामाजिक कामों में भी जरूरत होती है और पारमार्थिक कामों में भी। गीता ने उसे प्रज्ञा नाम दिया है। उसका अर्थ है जो कभी चलित नहीं होती, स्थिर ही निर्णय देती है। ऐसी प्रज्ञा जिस मनुष्य में स्थिर होती है, उसे गीता ने स्थितप्रज्ञ नाम दिया है। यह गीता का अपना खास शब्द है।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों की विशेषता इस नाम से ही प्रारम्भ होती है। भक्त, ज्ञानी, योगी आदि नाम सर्वत्र चलते हैं। भक्त के लक्षण आपको बाइबल में, कुरान में, भागवत में, रामायण में इस तरह जगह-जगह मिलेंगे लेकिन स्थितप्रज्ञ के लक्षण से आपको गीता की याद आयेगी यानी गीता ने शब्द ही नया बनाया है। नवीन कल्पना रखनी होती है तो नया शब्द बनाते हैं। यद्यपि स्थितप्रज्ञ एक आदर्श पुरुष का वर्णन है जो लोगों के सामने रखा। तो भी विशेष पुरुष के लक्षण मानकर नया नाम रखना पड़ा, यहीं से उसकी विशेषता शुरू होती है। यद्यपि प्रज्ञा

प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य के बिना प्राण-शक्ति नहीं बनती। देह की स्वच्छता नहीं रही तो प्राण कुंठित होंगे। ब्रह्मचर्य, शरीर की शुद्धि और व्यायाम यह सारा उत्साह बढ़ानेवाला है और प्राण के लिए पोषक होता है। कल ही मैंने पत्र में पढ़ा कि संगीत से फसल यानी उत्पादन बढ़ा है। अब यह माना भी जा सकता है। सुनने में अच्छा लगता है। संगीत से फसल बढ़ती है तो मन का आनन्द होता है, आश्चर्य भी होता है, उत्साह भी बढ़ता है, लेकिन वह संगीत अच्छा होना चाहिए। भावोत्पादक संगीत बना तो उसमें अच्छा मौन लगता है। उससे प्राण-शक्ति जाग जाती है। प्राण याने क्या? क्या वह हृदय है? उसकी व्याख्या करना मुश्किल है। यह जरूर है कि जीवन के लिए वह एक अत्यावश्यक चीज है। श्रद्धा, धैर्य, स्मृति यह सारी चीजें साधना के लिए आवश्यक हैं। वीर्य के साथ प्राण-शक्ति का अधिक संबंध रहता है।

इन्दौर —कार्यकर्ता वर्ग में

१२-८-'६०

कुसंस्कार कमजोर नहीं बनते, कुसंस्कार कमजोर पड़ते हैं। यह परमात्मा की कृपा ही है कि कुसंस्कारों का क्षय होता है और सुसंस्कार बढ़ते हैं। नींद में बड़ा भारी गुण है कि मनुष्य साम्यावस्था में पहुँच जाता है। यह बात कहता सिर्फ हूँ, इसलिए आज इस पर ध्यान देता हूँ।

संस्कारों की स्मृति

मनुष्य में दूसरी एक विलक्षण शक्ति है। वह संस्कारों के कारण बनी है। उनके कारण संस्कार पूर्ववत् कायम रहते हैं। जिस वक्त संस्कार हुआ—किसी बात का, दृश्य का या ध्वनि का जो संस्कार हुआ—वह स्मरण-शक्ति के कारण ताजा होता है। मनुष्य के सामने बहुत बड़ी समस्या है, स्मृति पर काबू रखना। जो बातें चित्त में बैठ गयीं उन्हें निकालना—भूलना—यह समस्या है। लेकिन जितना हम भूलने की कोशिश करते हैं, उतना वह पक्का होता है। इसलिए साधना में इतना कठिन कार्य जो मैंने अनुभव में देखा वह है स्मृति का शासन। कोई आभास होने पर पहले सुना हुआ बुरा शब्द सामने में आता है। बचपन के संस्कार बहुत तीव्र होते हैं। वे बड़े गहरे होते हैं। यहाँ इन्दौर में मैं देखता हूँ कि बड़े बड़े इश्तहार, चित्र होते हैं। उनका बच्चों के मन पर गहरा असर होता होगा। बच्चे के चित्त पर अगर इन चित्रों का संस्कार जम जाय, तो उसे हटानेवाली शक्ति बच्चे को कौन देनेवाला है? इसलिए संस्कारों में जो शक्ति है वह बहुत बड़ी है। भगवान् ने कहा 'मैंने योग कहा था और उसमें बहुत काल बीत गया तो वह नष्ट हो गया।' काल-प्रवाह का सामर्थ्य काल में है। लेकिन स्मृति ऐसी चीज है, जो बहुत ज्यादा दखल देती है। इसलिए वह मनुष्य की ताकत के बाहर है। कोई कहता है कि मैं नींद की कोशिश करता हूँ लेकिन नींद नहीं आती। यह कोशिश ही नींद के खिलाफ है। आज मैं जरा थका हुआ था, तो प्रार्थना के बाद तुरन्त सो गया। पाँच मिनट में नींद आ गयी। पाँच मिनट के बाद उठना है, यह समझकर सोया था लेकिन साढ़े छह मिनट हो गये। इतने में बिलकुल गहरी नींद का अनुभव किया। नींद के लिए जो प्रयत्न है वह नींद के

हो मुख्य गुण मानकर लक्षण रखे। वे रूखे सूखे दीखते हैं। भक्त-लोगो की तरह आर्द्र हृदय हो रहा है इस तरह का वर्णन स्मृम नहीं मिलता। जैसा कबीर ने कहा रूखा सूखा राम का टुकड़ा,' वैसा यह है। लेकिन उसमें एक जगह गीतावाक्य है कुछ नमी है। वह स्थान जो भगवान् बना रहे हैं प्रज्ञा प्राप्ति में रस निवृत्ति होनी चाहिए और कुछ काम में ज्ञान और प्रयत्न करना मानते कम पड़ता है। वहाँ कहा है तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्पर। वहाँ जगह परमेश्वर का उल्लेख आया है। मत्पर याने मुझे ही पर समझकर मुझमें लीन हो जाओ। नारायण भक्त इन्द्रियों को काबू में रखता है। वहाँ प्रज्ञा स्थिर होती है, जब वह बिलकुल लाचार हो जाता है।

संस्कारों की गतिविधि

मनुष्य की दो शक्तियाँ—पुरुषार्थ शक्ति और प्रयत्न-शक्ति, ज्ञान शक्ति और कर्म शक्ति—यहाँ पूर्व-संस्कारों के कारण कम पड़ती है और ये पूर्व-संस्कार भी इस जन्म के नहीं अनेक जन्मों से संचित है। यह जो अनेक जन्मों की जानकारी मालूम हुई वह इसलिए कि कुछ संस्कारों की अन्त ज्यादा पकड़ चित्त पर है बावजूद इसके कि प्रवाह उलटा है। उसके कारण बनाना जरा मुश्किल होता है। और संस्कार भी जिस वक्त हुए, उस वक्त वे चित्त पर उठते हैं। लेकिन कालक्रमेण वे क्षीण होने चाहिए क्योंकि काल में वेग-क्षय की सामर्थ्य है। किसी भी चीज का वेग, जैसे जैसे काल बढ़ता कम होता जायगा। हम गेंद फेंकते है तो प्रतिक्षण उसका वेग कम होता जाता है। यही हाल संस्कारों का है। जैसे काल बीतता है वह कम होता है—उसका क्षय होता है। जैसे काम का गुस्सा आया। उसमें बहुत कुछ कर डालने की इच्छा हुई। किसी कारण वह नहीं बना। फिर रात में निद्रा आ गयी। दूसरे दिन वह गुस्सा बहुत कम हो गया। इसलिए इंग्लिश में कहावत है इस बात पर 'स्लीप ओवर करो।' याने उतना काल बीच में चला जाय तो संस्कार का वेग कम हो जायगा। काल में क्रोध का वेग कम होता है अर्थात् संस्कार कमजोर पड़ते हैं।

का स्मरण है। मुसलमानों में पाँच बार प्रार्थना होती है। उसमें एक चेक-अप हो जाता है। डाक्टर कभी-कभी मिलते हैं। वे आते रहते हैं। मैं दवा तो नहीं लेता, लेकिन चेक-अप कर लेता हूँ। वैसे नमाज द्वारा चेक-अप होता है। त्रिकाल संध्या से चेक-अप होता है। लेकिन अल्लाह का जिक्र सबसे श्रेष्ठ है। नित्य-स्मरण बताने के लिए संस्कृत में शब्द है—अनुस्मरण। भगवान् का अखण्ड लगातार स्मरण रहे यह भक्ति का परम श्रेष्ठ प्रकार है जिससे अन्य स्मृतियाँ हट जाती हैं। बुरे संस्कारों को हटाना चाहिए इसलिए अच्छे संस्कार डालो लेकिन स्मृति कमाली यह करती है कि वह अच्छे और बुरे संस्कारों का स्मरण रखती है। वह बुरे संस्कारों को काटती नहीं। जमा खाने में से पाँच गये तो दो बचे। यह गणित में होता है। लेकिन बीजगणित में ऐसा करने से दोनों कायम रहते हैं एक पाजिटिव और एक निगेटिव साइन के साथ—धन और ऋण चिह्नों के साथ। यहाँ संस्कारों का घटाव हो सकता है लेकिन कुसंस्कारों का स्मरण (रेकार्ड) रह जाता है यानी दोनों रेकार्ड इतिहास में रह गये। मान लीजिए कोई देश पराधीन था। उसमें परिवर्तन आया। वह देश अब स्वाधीन हुआ है लेकिन इतिहास में रेकार्ड कायम है कि वह देश पहले पराधीन था। आज स्वाधीन हुआ है तो भी पुराना रेकार्ड कायम है। सवाल यह है कि रेकार्ड में चीज कैसे हटे? जवानी ने आकर बचपन हटा दिया और बुढ़ापे ने जवानी हटा दी लेकिन बचपन का और जवानी का स्मरण कैसे हटायेंगे? चाहे अच्छे स्मरण हों, चाहे बुरे उनको कैसे हटाया जाय? इसलिए भगवत्स्मरण बताया है। उसीमें मनुष्य पूर्ण एकाग्र हो सकता है। गणित में तन्मयता एकाग्रता रात-दिन हो सकती है। सपने में भी गणित के उदाहरण छूट सकते हैं। जाग्रति में अगर किसी गणित का उत्तर नहीं मिलता तो सपने में मिलता है और बहुत आनन्द होता है। यह अनुभव की बात है। लेकिन वह तन्मयता भी कैसी है जिसमें भूख लगी तो खाना पड़ता है और नींद आयी तो सोना पड़ता है चाहे कम खाया और कम सोया। यानी गणित सब दुनिया

खिलाफ है। याद नहीं आती तो शरीर को ढीला छोड़ दो। लेकिन मन को ढीला छोड़ दिया, तो मुश्किल है। जैसे प्रयत्न याद के खिलाफ है वैसे भूलना स्मृति के खिलाफ है। जितना भूलने की कोशिश करते हैं उतनी याद आती है। रात दिन वह याद चित्त को घेर रहती है। इसलिए दूसरी स्मृतियों को जगाने का मौका कम देता है। इसलिए भगवान् ने कहा 'युक्त आसीत मत्परः'। परायण शब्द का अर्थ इतना तन्मयता है कि रात-दिन और कोई बात सूझ ही नहीं सकती। दूसरी चीजें स्वयं ही भूल जाता है। आसक्ति में अन्य सब बातों में विस्मृति आती। इसलिए स्मृति भ्रंश का विषय यहाँ आता है। स्थितप्रज्ञ के लक्षण में स्मृति भ्रंश वाला बुद्धिनाश अर्थात् सर्वनाश कहा है। आत्मस्मृति होना चाहिए। वह आता है और अन्य स्मृतियों का असर चित्त पर रह जाता है इसलिए सम स्मृति भ्रंश कहा है। संस्कारों का छोड़ना मुश्किल नहीं मालूम होता, लेकिन संस्कारों की स्मृतियों को छोड़ना मुश्किल है। सारी गाथा उसमें है अनन्यचेता सततम्।' 'सततम' यह एक शब्द जोड़ दिया। फिर भी तृप्ति नहीं हुई तो और जोड़ दिया

'अनन्यचेता सततं यो मां स्मरति नित्यशः।"

स्मृति का महत्त्व कहाँ?

यहाँ स्मृति का महत्त्व है। अन्य वस्तु का विस्मरण करने की कोशिश उन स्मृतियों को जगाती है। गलत स्मृति को हटाने में पाजिटिव प्रक्रिया काम में आयेगी निगेटिव नहीं। उसमें स्मरण तो कायम रहता है। इसलिए कहा है सुमिरन कर ले रे मना। कुरान शरीफ में आता है कि सलात याने प्रार्थना बुराई को रोकती है और अच्छे काम में मदद देता है लेकिन जिक्रुल्लाहु अकबर।' मतलब, सलात से भी अल्ला का स्मरण बेहतर है। प्रार्थना अच्छी चीज है। उसमें भलाई की प्रेरणा मिलती है बुराई दूर होती है। प्रार्थना सदाचार है। सदाचार का सम्मान करना चाहिए। उससे लाभ होता है। लेकिन प्रार्थना से भी बेहतर अल्ला

की बहुत संस्कृत टीकाएँ देखीं। प्राकृत की भी देखीं। लेकिन सार नहीं। इनमें भी गिरि भावार्थ ने ही मराठी पर विस्तृत लिखा था है। लेकिन मराठी का तर्जुमा जिसने किया है, उसका precision प्रेसिशन का ख्याल बहुत रखना पड़ता है। 'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। जब जब धर्म की ग्लानि होती है—इस तर्जुमा करने वाले भी धर्म के लिए कौनसा शब्द रखेंगे? Duty Religion या Righteousness क्या रखा जाय? धर्म का तर्जुमा किस शब्द में करेंगे? मान लेंगे कि जो शब्द ऊपर है वही नीचे रखा अपने धर्म के लिए धर्म रखा तो काम भी सरलता पूरा हुआ। पर संस्कृत में जो टीकाएँ हैं उनमें धर्म शब्द का अर्थ कम नहीं लिखा है दूसरा शब्द लिखा है। इसलिए वह व्याख्यान बन जाता है। इसके लिए सोचना पड़ता है। जैसे गणित में एक्स की वैल्यू बताओ उसमें कोई भी हो एक्स नहीं होना चाहिए। उसी तरह धर्म शब्द का भी तर्जुमा करना हो, तो धर्म शब्द का उपयोग नहीं होना चाहिए। इसलिए बहुत सोचकर उसका पर्याय निकालना पड़ता है। मैं पढ़ता था बार-बार लेकिन वहाँ मुझे ठेस लगती थी—कामात् क्रोधोऽभिजायते। कामना से क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसा अनुभव तो नहीं आता है। आम खाने की इच्छा हुई। हमने आम खा लिया। अच्छा लगा। तो उसमें क्रोध कहाँ उत्पन्न होगा? अगर उसमें बाधा आती तो क्रोध आयेगा। आम खाने को मिला तो क्रोध नहीं आता। और गीता तो निश्चित हो कहती है कि 'कामात् क्रोधोऽभिजायते।' यह मामला हाल मेरे ध्यान में आया कि इसका मतलब है क्षोभ। मूल अर्थ में वह क्षोभ है। क्रुध धातु है जिसका मूल अर्थ क्षोभ है। आज जिसे हम क्रोध कहते हैं वह क्षोभ का एक प्रकार है। फिर 'क्रोधाद् भवति संमोहः' ऐसा कहें तो सरल अर्थ होता है। यह आज मैंने की तो मुझे लगा कि स्थितप्रज्ञ के लक्षण में यह बहुत बड़ा स्थान है। उसमें क्षोभ नहीं है।

भगवत्स्मरण आवश्यक

प्रज्ञा की प्राप्ति चाहिए तो सिर्फ दुर्गुणों को हटाने से नहीं

में पिरोया नहीं रह जाता। सब दुनिया में जो पिरोया जा सकता है, याने सब क्रिया के बावजूद जो कायम रह सकता है जैसे श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया, उसी तरह हर काम के साथ-साथ जो कायम रह सकता है, ऐसा भगवत्स्मरण ही है। हर कृति के साथ वह कायम रहता है। आप बैठे हैं तो आपका बैठना बन्द हो गया लेकिन श्वासोच्छ्वास तो चलता ही है। वैसे हर कृति में भगवत्स्मरण रहता है। नास्तिक लोग गहराई में जाते नहीं इसलिए नमस्कार करने में डरते हैं। प्रेम के कारण एक-दूसरे का अनुराग बढ़ता है—जैसे पति और पत्नी, माता और पुत्र इनको विरह में लगातार एक-दूसरे का स्मरण होता है, लेकिन भगवत्स्मृति के सामने वह बहुत छोटी चीज है। भगवत्स्मृति अन्तर-बाह्य हो सकती है। उसकी पकड़ में दूसरी कोई चीज टिकती नहीं। विरहासक्ति आदि उसमें परमेश्वर की भक्ति के लिए दी है। पर वह भी बहुत कमजोर मिसाल है। भगवत्स्मृति में मनुष्य जितना तन्मय होता है।

आत्मस्मृति का साधन : अभ्यास

इसलिए गीता में एक जगह कहा—'पर बुद्ध्वा निवसत' और फिर कहा 'युक्त आसीत मत्परः'—मत्परायण हो। उतना ही हिम्मत कमा का है। उतना ही गीलापन है। क्योंकि वह सब एक साइन्टिस्ट की भाषा जैसा है। साइन्स में तटस्थता होती है। चित्त स्थिर हो, तो क्षोभ नहीं होता। ऐसा पारमार्थिक शास्त्र आपके सामने रख रहे हैं। निश्चय-शक्ति का मतलब है चित्त पर कोई दबाव न हो, अन्यथा पचास चीजें बाधा डाल सकती हैं। करुणा भी निश्चय में बाधा डाल सकती है, इसीलिए सत्य, प्रेम, करुणा कहता हूँ। करुणा और प्रेम में दोष आ सकते हैं पर सत्य से उनका निराकरण हो सकता है। सत्य ही प्रेम और करुणा की पूर्ति करता है। इसलिए प्रज्ञा याने पक्का निश्चय।

गीता में क्षोभ के लिए क्रोध शब्द है। 'कामात् क्रोधोऽभिजायते' इसका भाष्य पहले कहा पर भी मेरे चित्त का समाधान देने लायक नहीं हुआ। बार-बार मैं स्थितप्रज्ञ के श्लोकों का चिंतन करता रहा और कुछ

१२

दर्शन का फलित साम्ययोग

'प्रतिपक्ष भावना' से कुसंस्कार निरसन

साम्य की साधना में सबसे बड़ी मुश्किल कुसंस्कारों को मिटाने की नहीं कुस्मृतियों को मिटाने की है। निश्चय समझा जाता है कि अच्छे संस्कार या बुरे संस्कार बचपन में हृदय पर गहराई से अंकित होते हैं। अब निग्रह-भावना अच्छी हो, इस पर जोर दिया जाता है और यह ठीक भी है। निग्रह-भावना जो भी हो लेकिन जहाँ रजोगुण और तमोगुण काम करता है, वहाँ सत्त्वगुण काम नहीं करता। अतः कुछ कुसंस्कारों का होना अनिवार्य-सा है। उन कुसंस्कारों को प्रयत्नों से मिटाया जा सकता है। वह मनुष्य के पुरुषार्थ का विषय है। कुसंस्कारों को मिटाने के लिए भगवान् के पास पहुँचना अनिवार्य नहीं, उतनी शक्ति मनुष्य को हासिल है। इसीलिए योगसूत्रकार ने प्रतिपक्ष भावना कही है। अगर हिंसा का संस्कार है, तो वह अहिंसा के संस्कार से मिटाया जायगा। बैर का संस्कार है, तो वह प्रेम के संस्कार से मिटाया जायगा। इसे एक प्रक्रिया के रूप में साधना-शास्त्र में बताया जा सकता है और मनुष्य प्रयत्न करके उसे हासिल कर सकता है। वह ध्येय कुसंस्कारों को मिटाने का है। कुसंस्कार गहरे हों, तो अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा। प्रयत्न की पराकाष्ठा भी करनी पड़ेगी। पर वह प्रयत्नसाध्य है ही। कुस्मृतियों को मिटाना अलबत्ता बड़ा कठिन समस्या है।

स्मृति-मुक्ति समस्या

कारण यह कि वह स्मृति रचाई के रूप में रह जाती है। इतिहास

चलेगा। गलत स्मृतियों को भी हटाना होगा। इसके लिए परमेश्वर की स्मृति का आश्रय लेना पड़ता है। ईसाइयों ने पाप को खतम करने के लिए बताया है कि कन्फेशन करें, कबूल करें, इजहार करें तो पाप खतम होगा। जैसे काल में क्षय करने की क्षमता है, वैसे पाप जाहिर करने में भी सामर्थ्य है। इतना तो ठीक लेकिन जाहिर करने से पुण्य का भी क्षय होता है। यह उनके ध्यान में नहीं आता। ख्यापन में—इजहार में—क्षय का सामर्थ्य है। इसलिए कुसंस्कार और स्मृतियाँ हटाने के लिए ईसाइयों ने उपाय कन्फेशन का उठाया। पर उसमें भी क्या होता है। ? कन्फेशन से पुन स्मृति पक्की होती है। आज मैंने जाहिर किया कि फलाँ तारीख को मैंने व्यभिचार किया या फलाँ तारीख को मैंने कत्ल किया या किसी को ठगा। जाहिर कर दिया, उससे पाप तो गया कुसंस्कार तो गये। लेकिन इसके आगे अच्छे संस्कार होंगे तो भी उस काम की स्मृति, यानी, इजहार से तो पक्की बनी। इसका उत्तर कन्फेशन में नहीं है। मैं मानता हूँ कि कन्फेशन में एक शक्ति है। समाज का बल हमें मिलता है समाज की मदद मिलती है और हमारे हाथ से ऐसे बुरे काम या गलतियाँ नहीं होंगी। लेकिन उसके कारण स्मृति तो बनेगी रेकार्ड तो हो जायगा। रेकार्ड अच्छे काम का भी होता है और बुरे काम का भी। इसलिए रेकार्ड में ही वह बस हटायें ? बुरे संस्कार याद आते हैं। उस याददाश्त को स्मृति से कैसे हटायें ? यही कठिन सवाल है। बहुत कठिन साधना है। इसलिए गीता में स्थितप्रज्ञ लक्षण में भगवत्स्मरण की ओर भगवत् भक्ति की आवश्यकता बतायी गयी है।

इन्दौर —कार्यकर्ता वर्ग में

१३-८-६०

आत्म-स्मृति का लोप

भगवान् ने इन सब स्मृतियों को स्मृति-भ्रंश कहा है। यानी जहाँ आत्म-स्मृति नहीं है वहाँ ये दूसरी स्मृतियाँ होती हैं। इसलिए आत्म-स्मृति की रक्षा का उपाय है कुस्मृतियों को मिटाना और शुभ-स्मृतियों का ग्रहण करना। कुस्मृतियाँ मिटानी ही होंगी और शुभ-स्मृतियाँ ग्रहण करना होगा यानी आत्मा में डालनी होंगी। अमुक ने बहुत अच्छा काम किया था। यह स्मृति मन में रह गयी। या काम मान लीजिए मैंने बहुत अच्छा काम किया, उसकी जो स्मृति रह गयी। ऐसे अच्छे कार्यों की स्मृति अहं के कारण उसे मिटाना कठिन है। बुरी स्मृतियों को मिटाना चाहिए और शुभ स्मृतियों को ग्रहण करना चाहिए। पर यह पहचानना चाहिए कि जो जो शुभ कार्य होते हैं उनका आधार न मैं हूँ न कोई दूसरा है बल्कि शुभ-कार्य सद्गुणों से प्रेरित होते हैं। वे सद्गुण आत्मा का रूप हैं। इसलिए किसी महात्मा ने अच्छा काम किया या मैंने अच्छा काम किया—यह स्मृति यानी आत्म-स्मृति है, गुण-स्मृति है। किसी महात्मा ने अच्छा काम किया, तो प्रेम के कारण किया, सत्य और करुणा के कारण किया। मैंने जो काम किया वह भी प्रेम के कारण किया यानी किसी गुण के कारण ही अच्छा काम हुआ है। जितना शुभ-कार्य दुनिया में होता है चाहे इस शरीर द्वारा होता हो या दूसरे किसी शरीर द्वारा होता हो, सत्य, प्रेम, करुणा आदि गुणों द्वारा ही होता है। सद्गुणों से प्रेरित होता है और यह गुण आत्मा का रूप है, इसलिए उसकी स्मृति वास्तव में आत्म-स्मृति में डुबाई जा सकती है। अगर हम ठीक से पहचानें तो यह हो सकेगा। अगर हम उसका अहंकार मानें कि इतना अच्छा काम तो मेरा और उतना अच्छा काम दूसरे किसी का, तो अहंकार हो जायगा। इतने मेरे अच्छे काम और इतने दूसरे के अच्छे काम, यह भेद आ जाय तो आत्म-स्मृति नहीं होगी। आत्म-स्मृति से हम अलग ही होंगे और उस बात को परिभाषा में स्मृति-भ्रंश ना कहा जायगा। यानी आत्म-स्मृति से वह अलग बात होगी। उसमें फिर किसी महात्मा का विशेष जय-जयकार होगा, तो दूसरे किसी का दर्जा कुछ कम

बदलने पर भी रेकार्ड कायम रहता है। रेकार्ड जलाने के लिए ज्ञानी पूर्णिमा की जरूरत होती है। उस दिन कुल-का-कुल रेकार्ड स्मृतियाँ जलायी जा सकती हैं। कुस्मृतियों को मिटाने के लिए परमेश्वर की कृपा का आवाहन करना पड़ता है। इसलिए 'युक्त आसीत मत्पर' ऐसा आदेश गीता में दिया है। भक्ति का इस प्रकार अनिवार्य जान कर आवाहन किया है। इसलिए भक्ति श्रेष्ठ है। ऐसे तो परमेश्वर की शक्ति अन्दर से आखिर तक प्रारम्भ से अन्त तक मदद करेगी, लेकिन कुछ लोग मानते हैं कि ईश्वर पर आधार रखने से मनुष्य प्रयत्न छोड़ता है। ऐसी बात नहीं है। लोग समझते हैं कि अवतार आयेगा और सब करेगा इसलिए कुछ नहीं करना पड़ेगा। वे समझते नहीं हैं। अवतार की राह देखना याने क्या? अवतार किसलिए आयेगा? दुर्जनों के विनाश के लिए और सज्जनों के पालन के लिए और इस तरह धर्म संस्थापना के लिए। अब अगर हम दुर्जन बने रहते हैं तो अवतार आयेगा और हमारा विनाश करेगा। अवतार की राह देखना याने अपने विनाश की राह देखने की बात होगी। अवतार की राह का मतलब ही है सज्जनता की पूरी कोशिश। सत्य की राह पर रहने की पूरी कोशिश करनेवाले अवतार की राह देखते हैं, ऐसा कह सकते हैं। अन्यथा अगर दुर्जन बने रहे आलसी बने रहे और कहीं अवतार आया तो हमारा विनाश हो जायगा। सारांश ईश्वर-निष्ठा में प्रयत्न का अभाव नहीं है प्रयत्न की पराकाष्ठा है। इसलिए ईश्वर की निष्ठा शुरू से आखिर तक मदद देती है। लेकिन जहाँ वह अनिवार्य है और उसकी मदद के बिना जहाँ चलेगा ही नहीं ऐसा स्थान है—स्मृति मुक्ति। इस स्मृति मुक्ति का क्या किया जाय? इसका उत्तर मुझे किसी नास्तिक से नहीं मिला। वैसे नास्तिकों से और बहुत सुना जिसमें कि ईश्वर की आवश्यकता नहीं भी मान सकते हैं। लेकिन इस मसले का उत्तर नास्तिक-दर्शन में इतना ही मिलता है कि कम भोग भोगते हुए अनेक जन्म प्राप्त करते हुए निर्वाण हो जायगा। जैनों ने यह उत्तर देने की कोशिश की है।

इसलिए "मत्पर" कहा है ताकि आत्म-स्मृति जागे और अन्य-स्मृति गुम हो। गीता में अर्जुन ने भगवान् का उपदेश सुना और अर्जुन से जब पूछा गया कि क्या तूने एकाग्र चित्त से सुना? तेरा मोह नष्ट हुआ? उत्तर में वह कह रहा है 'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा।' स्मृति मुझे मिली है। 'त्वत्प्रसादात् नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा' मोह नष्ट हुआ यानी भली और बुरी स्मृति गयी और स्मृति मिली याने आत्म-स्मृति मिली। कैसे हुआ यह काम? "त्वत्प्रसादात्"। तेरी कृपा से। उसने बिलकुल एक शास्त्र रच दिया। मोहनाश याने स्मृतिलाभ ये दोनों भगवान् की कृपा से होने हैं। और वह मेरे पास म अनुभव आया ऐसा अर्जुन बोल रहा है। नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात्। यहाँ स्थितप्रज्ञ के श्लोक शुरू होते हैं। 'क्रोधाद् भवति संमोह' काम से मोह होता है मोह से स्मृति भ्रंश होता है। अपनी आत्म-स्मृति नष्ट होती है इसमें बिलकुल उल्टी प्रक्रिया अर्जुन की है। यह विषय मैं समाप्त कर रहा हूँ।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में यह बहुत महत्त्व का अंश है।

ब्रह्मनिर्वाण

दूसरी बात—यह सारा विषय स्मृति और प्रज्ञा—योगसूत्र ने छेड़ा है जो गीता के बाद का है। बौद्धधर्म ने छेड़ा है जो गीता के बाद का है और वेदोपनिषद् में उसकी झलक दीखती है, जो गीता के पहले की है। माने वेदोपनिषद् पूर्वदर्शन है। गीता का मध्य-दर्शन है। योगसूत्र बौद्ध आदि का उत्तर-दर्शन है या अन्तिम दर्शन है। ऐसे तीन दर्शन अपने देश में हैं। बौद्धों में जैन भी मैंने मान लिया। इन तीनों में इसकी चर्चा चलती है बल्कि इसी चीज की चर्चा चलती है स्मृति मुक्ति और 'आत्म स्मृति' का लाभ। अन्य स्मृतियों से मुक्ति। यह जहाँ होता है वहाँ मनुष्य को निर्वाण प्राप्त होता है। गीता ने कहा ब्रह्मनिर्वाण। आत्म स्मृति चाहिए। उसके लिए भगवत्-कृपा चाहिए। उससे ब्रह्मनिर्वाण मिलेगा। इस तरह एक ही छोटे-से 'स्थितप्रज्ञ दर्शन' में आत्मा ईश्वर और ब्रह्म ऐसे तीनों शब्दों का उपयोग हुआ है। आत्मा जिसको हमें

गा। मेरे जरिये बहुत अच्छा, बड़ा काम होगा तो मेरा दर्जा मेरे मन में बहुत बढ़ेगा। ये दर्जे बढ़ाने और घटाने के सब काम उन अच्छी स्मृतियों में से होंगे, अगर अच्छी स्मृतियाँ गुण प्रेरित हैं और गुण आत्मा के होते हैं। इसका भान रखें तो हम आत्म-स्मृति से अलग नहीं होंगे, इसलिए अच्छी स्मृतियों को आत्म-स्मृति में डुबोना है। इसीका नाम शुभ-स्मृतियों को हजम करना है। मैंने केला खाया और हजम किया तो उसे अपना रूप दिया। मैंने केले के रूप में खाया और मांस के रूप में वह आ गया यानी शरीर का रूप उसे दिया। (अपना यानी शरीर का।) केला खाने का सम्बन्ध शरीर से है, इसलिए शरीर का रूप दिया। वैसे ही कोई शुभगुण प्रेरित काम हुआ—मेरे जरिये हुआ तो मेरे इस शरीर के जरिये नहीं लेकिन अन्दर जो आत्मा है उसके जरिये हुआ। यह जब ध्यान में आयगा, तब दुनिया में कोई महात्मा नहीं अल्पात्मा नहीं आत्मा ही रहता है। कोई महात्मा है और कोई अल्पात्मा यह कोरा खयाल ही खयाल है। हर मनुष्य आत्मा ही है। आत्मा न महान् होता है, न अल्प। जहाँ उसके गुण का प्रकाश ज्यादा पड़ा, वहाँ महात्मा नाम देते हैं। जहाँ उसके गुण का प्रकाश कम पड़ा, वहाँ अल्पात्मा नाम देते हैं। प्रकाशन एक बात है गुण दूसरी बात है। प्रकाशन कम-बेशी होता है, उस पर से हम महात्मा और अल्पात्मा कहा करते हैं। वस्तुतः वहाँ जितना गुण प्रकट हुआ, वहाँ आत्मा का ही श्रेय है किसी व्यक्ति विशेष को नहीं। इस तरह शुभ स्मृतियों को आत्मा में डुबोना है।

कुस्मृतियाँ मिटें और शुभ-स्मृतियाँ हजम हो जायें, तो आत्म-स्मृति जागेगी और दोनों जोर करेंगी। शुभ-स्मृति और कुस्मृति दोनों रहेंगी, तो आत्म-स्मृति नहीं जागेगी आत्म-स्मृति का भ्रम होगा। आत्म-स्मृति जागे उसका उपाय है—भली-बुरी स्मृतियों से अलग होना। भली-बुरी स्मृतियों से अगर हम अलग होते हैं तो आत्म-स्मृति होती है। आत्म-स्मृति जागेगी तो कम स्मृतियाँ जायँगी और कम स्मृतियाँ जायँगी तो आत्म-स्मृति जागेगी। यह है चक्र और इस चक्र का तोड़नेवाला है परमेश्वर की कृपा।

इस्तेमाल करें। यह हम करते भी हैं। मेरी बुद्धि कमजोर है तो गुरु का साथ मैं लेता हूँ। गुरु-कृपा मुझ पर हो रही है, ऐसा हम समझते हैं। उस ईश्वर की कृपा हम नहीं समझते हैं। जैसे केला खाने से मांस बढ़ा, तो केले की कृपा समझते हैं, वैसे ही गुरु-कृपा हुई ऐसा समझते हैं। ईश्वर की कृपा हुई, ऐसा नहीं मानते। लेकिन एक मौका आता है, जहाँ न गुरु-कृपा मदद करती है, न वायु-कृपा और न और कोई कृपा। वहाँ बाहर से एक मदद मिलने की सूरत है, वह जगह है स्मृतियाँ नष्ट करने की। उस वक्त ब्रह्माण्ड में जो परमेश्वर है, उसकी मदद हम ले सकते हैं। यहाँ आत्मतत्त्व की कमी मालूम हुई, उसकी पूर्ति के लिए परमेश्वर तत्त्व से मदद मिलती है। बुद्धि-तत्त्व में जब कमजोरी आती है, वहाँ बाह्य सृष्टि में जो बुद्धि-तत्त्व है, उसकी मदद हम लेते हैं और गुरु की बुद्धि के जरिये, ग्रन्थ के जरिये बाहर की बुद्धि की मदद लेते हैं। उसी तरह जहाँ आत्मा में बहुत ज्यादा कमजोरी महसूस करते हैं, वहाँ परमेश्वर से, बाह्य सृष्टि में जो तत्त्व है जिसके प्रतिबिम्ब-स्वरूप यह आत्मा है, वहाँ से हम मदद ले सकते हैं। यहाँ परमेश्वर की कृपा का स्थान आया। परमेश्वर का स्वरूप यह है कि वह ब्रह्माण्डधारी है, जैसे हम शरीरधारी हैं। और जैसे हम देह भिन्न हैं, वैसे वह ब्रह्माण्ड भिन्न है। जैसे हम देह को पहचाननेवाले हैं, वैसे वह ब्रह्माण्ड को पहचाननेवाला एक है। वह परमेश्वर है। उससे हमें मदद मिल सकती है। अब वह मदद अगर मिलेगी और स्मृतियाँ सब खतम होंगी और शुभ-स्मृतियाँ आत्म-स्मृति में डूब जायेंगी तब आत्म-स्मृति जागेगी और तब ब्रह्म-निर्वाण होगा। ब्रह्म में आत्मा लीन हो जायगा। केवल निर्वाण हो जायगा, यह शब्द बौद्धों ने कहा। स्थितप्रज्ञ-दर्शन की पुस्तक के आखिर में ब्रह्म-निर्वाण का आधार लेकर बौद्ध और वेद का समन्वय किया गया है। उसके लिए एक नया दर्शन गीता की परिभाषा में बनाया है। एक ब्रह्म च य पश्यति स पश्यति। जो शून्य और ब्रह्म एक है, ऐसा देखता है वही सही देखता है। ऐसा एक श्लोक हमने बनाया और वहाँ स्थितप्रज्ञ-दर्शन विचार समाप्त होता है।

अनुभूति होती है हम महसूस करते हैं कि हम हैं, यह आत्मा है। सामने सृष्टि खड़ी है उसमें परमेश्वर अन्तर्यामी रूप में विराजमान है, वह परमेश्वर है। और ब्रह्म वह है, जिसमें यह परमेश्वर और यह आत्मा दोनों दूर जाते हैं। शरीरगत, शरीर को पहचाननेवाला जो एक तत्त्व है, शरीर से भिन्न उसे आत्मा कहते हैं। सृष्टि के अन्दर रहनेवाला, सृष्टि को पहचाननेवाला सृष्टि से भिन्न जो एक तत्त्व है, उसे ईश्वर कहते हैं। यानी ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त होता है, उसकी कृपा मिलती है। यह रोजमर्रा हम अनुभव करते हैं। हम अनुभव करते हैं, फिर भी नहीं समझते कि यह ईश्वर की कृपा है। प्रतिक्षण हम श्वास अन्दर लेते हैं खराब वायु बाहर छोड़ते हैं। बाहर का स्वच्छ निर्मल वायु अन्दर लेते हैं। यह ईश्वर की कृपा हो रही है लेकिन हम इसे वायु कृपा समझते हैं। शरीर में जल-तत्त्व है, यह जरा सा सूखता है तो पानी पीते हैं। तब हम जल-कृपा समझते हैं। परमेश्वर की कृपा नहीं समझते। ऐसी मिसालें बहुत दी जा सकती हैं। हमारा शरीर मांस का बना है। शरीर का वजन कम घटता है शरीर कमजोर बनता है, तो बाहर एक मांस बनानेवाली सृष्टि पड़ी है। मक्खन और दूध हम खाते हैं और उससे हमारा शरीर बनता है। इसे हम दूध और मक्खन की कृपा समझते हैं। ईश्वर की कृपा नहीं समझते। याने ब्रह्माण्ड की कृपा पिंड पर हो रही है, यह नहीं समझते। सूर्य की कृपा आँख पर हो रही है, जल की कृपा शरीरान्तर्गत जलतत्त्व पर हो रही है। वायु की कृपा प्राण पर हो रही है। यह सब हो रहा है, इसलिए हम सब कुछ पाते हैं। बाहर की सृष्टि की कृपा इस शरीर पर, पिंड पर नहीं होगी तो शरीर काम नहीं करेगा। वह चलेगा नहीं। यह जो हम पर कृपा हो रही है, वह सिर्फ ईश्वर-कृपा है। यह हम महसूस नहीं करते हैं। बल्कि वह स्थूल सृष्टि की कृपा है, ऐसा समझते हैं और कुछ हद तक वह सही है। लेकिन जहाँ हम स्वच्छ वायु की मदद लेते हैं फेफड़े मजबूत करने के लिए वहाँ हम यह भी कर सकते हैं कि अन्दर की बौद्धिक और मानसिक दुर्बलता हटाने के लिए ब्रह्माण्डगत समष्टि और मन का भी

जेल में हमारे व्याख्यान हुए थे। जेल में ही ब्रॉडकास्ट किया गया और विचार भी जेल में ही बना। उसमें स्थितप्रज्ञ-दर्शन की समाप्ति बौद्ध और वेदान्त के समन्वय के विचार में की। फिर जब हम गया जिले में घूमते थे तब गौतम बुद्ध की स्मृति मन में रहती थी। हमने वहाँ समन्वयाश्रम की स्थापना की। सन् १९५२ से लेकर १९५४ तक एक विचार हमारा हुआ, जिसमें बौद्धों का हमें सतत स्मरण रहा। बाद में भूदान शुरू हुआ और उसमें समन्वयाश्रम बना। उसके बाद गौतम बुद्ध के धम्मपद का रचनान्तर हमने किया। धम्मपद के श्लोक सुभाषित जैसे हैं। ग्रन्थ का क्रम व्यवस्थित नहीं है, ४२० श्लोक हैं। उन्हें हमने १६ अध्याय और १०० प्रकरणों में बाँटा। हरएक प्रकरण और अध्याय को नाम दिया और अन्त में मूल शब्दों की सूची दी, जो अभी तक पाली भाषा में नहीं बनी थी। शुरू में हमने जो प्रस्तावना लिखी है वह मामूली काम की नहीं है क्योंकि उसमें रचनान्तर है, लेकिन श्लोकों का तर्जुमा नहीं किया है। वह किया जाता तो वह काम योगी के काम की चीज होती। आज वह विद्वानों के काम की चीज है। सन् १९५४ से लेकर १९६० तक सतत यह विचार मन में रहा कि वेदान्त और बौद्ध-दर्शन का समन्वय होना चाहिए। बौद्ध-दर्शन से मेरा मतलब जितने भी दर्शन हिन्दुस्तान में साधना के विषय में सोचते हैं परमेश्वर को अलग रखकर वे कुल दर्शन एक ओर और परमेश्वर की सत्ता अनिवार्य समझकर जो दूसरे दर्शन बने हैं वे दूसरी ओर। एक को आस्तिक कहते हैं दूसरे को नास्तिक। लेकिन हम इसे अन्याय समझते हैं। वह आस्तिक या नास्तिक नहीं। एक आत्म प्रयत्नवादी है दूसरा आत्म प्रयत्न की जहाँ पराकाष्ठा होती है, वहाँ भक्त के लिए ईश्वर की कृपा रखनेवाला है। दोनों पूरे प्रयत्नवादी हैं परन्तु एक प्रयत्नवाद में ही समाप्त करता है और दूसरा प्रयत्नवाद के अन्त में परमात्मा की कृपा की याचना की बात करता है। इस तरह ये दो दर्शन हैं। एक आत्मा पर निर्भर है दूसरा परमेश्वर की कृपा का आवाहन करनेवाला। दोनों दर्शनों का समन्वय होना चाहिए। तभी समाधान होगा तत्त्वज्ञान का और

जीवनसूत्र धर्म समन्वय

बौद्धधर्म शून्यवादी है गीता ब्रह्मवादी। लेकिन शून्य और ब्रह्म में फर्क नहीं है। जहाँ कुस्मृतियाँ और अशुभ स्मृतियाँ समाप्त होती हैं, वहाँ आत्मस्मृति जागती है और शुभ-स्मृतियाँ खत्म होती है इसीको बौद्ध शून्य कहते हैं। और यह कहता है, जहाँ आत्म-स्मृति जागेगी वहाँ अन्य स्मृतियाँ खत्म होंगी। यह ब्रह्म का नाम लेता है पॉजिटिव–भावात्मक भाषा बोलता है। यह अभावात्मक भाषा बोलता है। अन्धकार का मिटना और प्रकाश का आना दोनों अलग अलग नहीं हैं। एक कहता है अन्धेरा मिट गया दूसरा कहता है, उजाला हो गया। अन्धेरा मिट गया एक पक्ष, उजाला हो गया दूसरा पक्ष। दोनों पक्षों का वाद चला—अन्धेरा मिट गया कि उजाला हो गया? यह वाद कैसे मिटेगा? दोनों एक ही हैं यों कहने से ही मिटेगा और किसी दूसरे तरीके से नहीं मिटेगा। इसलिए हम ब्रह्म निर्वाण कहते हैं और बौद्ध निर्वाण कहते हैं। तो शून्य और ब्रह्म दोनों अन्धेरा मिटा और उजाला हो गया यह समन्वय का विचार हमने रखा। इस समन्वय की जरूरत हमने सतत महसूस की है। 'स्थितप्रज्ञ दर्शन' पुस्तक के अन्त में लिखा है यह हमें याद नहीं था, हमारे मित्र ने याद दिलाया। स्थितप्रज्ञ-दर्शन के पहले एक किताब लिखी थी जब हम जवान थे। वह हमारा प्रथम लेखन है—'उपनिषदों का अध्ययन'। वह अत्यन्त जटिल ग्रन्थ है फिर भी बहुत गहरा है। अब वह नये सिरे से प्रकाशित हुआ तो उसे हमने दुबारा पढ़ लिया। उसमें खास फर्क करने की जरूरत नहीं महसूस हुई। आज अगर वह लिखा जाता तो उतनी जटिल नहीं लिखी जाती। लेकिन हमारे विचार में कोई फर्क नहीं हुआ। वह हमारी पहली किताब है। बुद्ध भगवान् का उपनिषद् के अध्ययन के साथ वास्तव में कोई ताल्लुक नहीं है। लेकिन उस पुस्तक की समाप्ति धम्मपद के वचन लेकर की है। उसी तरह स्थितप्रज्ञ-दर्शन में भी हमने बौद्धों और वेदों के समन्वय का विचार रखा है। 'उपनिषदों का अध्ययन' किताब सन् १९२३ की है और स्थितप्रज्ञ-दर्शन किताब सन् १९४५ की।

कर्मयोग और ध्यानयोग ये दोनों भी गीता में आये हैं। और ऐसे अन्य भी आधार पुस्तकों में मिलते हैं। लेकिन हमने गीता में जो पाया है, उसके आधार पर 'साम्ययोग' ही गीता को अन्त में माना है। इसलिए अपना साम्ययोग है। 'अभिधेयं परमं साम्यम्।' प्राप्तव्य वस्तु साम्ययोग है। साम्ययोग हमने अन्तिम माना है और समन्वय को हम अपना चिन्तन की पद्धति बनाना चाहते हैं। समन्वय पद्धति से हम साम्ययोग तक पहुँचेंगे, यह दृष्टि हमारे तत्त्वज्ञान की चर्चा में रही है। जितने भी हमने ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें पद्धति समन्वय की और अन्तिम तत्त्व साम्ययोग का है। हमारा जो दार्शनिक साहित्य है, उसमें साम्ययोग दर्शन है और समन्वय पद्धति है।

इन्दौर —प्रातःकालीन कार्यकर्ता वर्ग में

१४-८-६०

सभी समाधान होगा जीवन विचार का। स्वतिन जितने ग्रंथ हमने लिखे हैं उनमें चार समाप्ति है। गीता प्रवचन की तुलना नजरीन-ए-नजरीब ग्रंथ के साथ कीजिये। गीता रहस्य या शंकराचार्य के भाष्य से आप तुलना कर सकते है। आप देखेंगे कि दोनों ग्रंथों में वाद है और एक पक्ष में अधिक ज्यादा है ऐसा दीखता है। एक ने कर्म-पक्ष में वजन डाला है तो दूसरे ने ज्ञान पक्ष में। इस तरह भाष्य लिखे गये हैं, लेकिन गीता प्रवचन में दिखाया है कि जिनका वाद है, उनका समन्वय हो सकता है।

हमारा आखिरी ग्रन्थ है साम्यसूत्र। संस्कृत में है। उसमें हमने एक सूत्र लिखा है 'शुकजनकयो एक एव मार्ग'—शुक और जनक का मार्ग एक है। यही बात आखिर लेकर 'गीता रहस्य' में झगड़ा पैदा किया गया है। शुक आदि इस मार्ग से गये—सन्यास मार्ग से और जनकादि उस मार्ग से गये—कर्मयोग के मार्ग से। इस तरह दोनों में वाद खड़ा किया है। गीता अलग अलग मार्ग है, ऐसा कहकर सन्यास मार्ग से कर्म-मार्ग श्रेष्ठ है ऐसा बताया है, यह विशेष वस्तु है। शुक और जनक का रास्ता एक ही है हमारा रास्ता अलग है। उनके रास्ते में फर्क नहीं। हमारा रास्ता उन दोनों से अलग पड़ा है यह जरा हम देख लें। शुक जनक की एकता जब हम ध्यान में लेंगे, तभी गीता का रहस्य हमारे हाथ आयेगा। साम्यसूत्र में हमने यही लिखाया है।

साम्योपासना

हमारे चिंतन का तरीका समन्वय का है। अन्त में हम साम्य की आशा रखते हैं। हम समन्वय पद्धति से सोचते हैं और उसके नतीजे में, अन्त में, हमें जरूरत है साम्य की। इसलिए गीता को हमने साम्ययोग नाम दिया। कोई कहता है, गीता कर्मयोग है कोई ध्यानयोग कहता है, कोई ज्ञानयोग कहता है। लोकमान्य ने उसे कर्मयोग कहा गांधीजी ने उसे अनासक्ति-योग कहा। ये सब नाम सही हैं अपने अपने विचार में। लेकिन हमने गीता को साम्ययोग नाम दिया। गीता में यह शब्द आया है। वैसे

में नहीं थे, शारीरिक संकट में भी थे। सिर्फ आध्यात्मिक संकट होता तो आप हमें याद करते। लेकिन संकट शारीरिक था, इसलिए जो पूज्य थे उनका स्मरण नहीं हुआ और जो प्रिय थे उनका स्मरण नहीं हुआ। जो पूज्य और प्रिय दोनों थे उन्हींका स्मरण हुआ।

हिन्दुस्तान के कुल लोग 'राजद्रोही'

भगवान् श्रीकृष्ण हमारे लिए दोनों हैं। वे परमपूज्य हैं। उनसे बढ़कर हमारे लिए कोई पूज्य नहीं है। उनकी बराबरी के रामचंद्र हो सकते हैं। उनसे बढ़कर हमें कोई प्रिय नहीं। संभव है कुछ अंशों में रामचंद्र भी बराबरी करें। मैंने जान-बूझकर 'कुछ अंशों में' कहा है। वे पूज्य थे, परम पूज्य थे, फिर भी स्वामी थे और हम उनके दास। राजा राम! हिन्दुस्तान में इतने राजा हुए, हम किसीका स्मरण नहीं करते। अपने अपने जमाने में सब हुए, गुजर गये। कुछ पालन भी शायद उन्होंने अच्छा किया और सताया भी बहुत था, लेकिन हमने उन राजाओं में से किसीको राजा नहीं समझा। हम तो सिर्फ राजा राम को जानते हैं। दूसरा राजा हम नहीं मानते। पुराने जमाने की बात है—सन् १९१० और १९११ की। जिधर देखो उधर राजद्रोह के केस चलते थे। हम उन दिनों बच्चे थे और बचपन में मीटिंग में बोलने का मौका भी आता था। एक मीटिंग में मैंने कहा कि हिन्दुस्तान के हम कुल लोग राजद्रोही हैं, क्योंकि रामजी के सिवा हम किसीको राजा नहीं मानते। इसलिए अब किनको ढूंढ़ते हो राजद्रोही के नाम पर? हमारे राम ऐसे अद्वितीय राजा हो गये कि उन्होंने बन्दरों से, जानवरों से काम लिया। आदमियों से सेवा ली। सबसे सेवा ली। सबकी सेवा की और सबका गौरव किया।

तुलसी कहूँ कहाँ राम सो साहिब शील निधान

मैं बहुत बार याद करता हूँ, तुलसीदास ने वर्णन किया: प्रभु तरुतल कपि डार पर ते किये आपु समान। वे बैठते थे पेड़ पर, ऐसे बेवकूफ बन्दर कि किसीकी कभी इज्जत करना जानते नहीं थे। प्रभु पेड़ के नीचे

• १३ •

श्रीकृष्ण-स्मरण

आज हम यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म-दिवस पर एकत्र हुए हैं। भगवान् कृष्ण हिंदुस्तान के परमप्यारे हैं। पूज्य तो वे हैं ही, प्यारे भी हैं। कुछ लोग पूज्य होते हैं, कुछ प्यारे। लेकिन भगवान् श्रीकृष्ण हमारे लिए परमपूज्य हैं और परमप्रिय भी। हम कह नहीं सकते कि वे हमको कितने प्रिय हैं।

पूज्य और प्रिय से सांत्वना

हमारे एक मित्र थे। उनको बहुत बड़ी बीमारी हुई थी। अच्छी नींद नहीं आती थी। बहुत सपने आते थे। बीमारी से ठीक होने के बाद हमसे मिले और कहने लगे, 'हम आपके—यानी विनोबा के—और महात्मा गांधीजी के विचार के प्रेमी हैं और आपके ही विचार पर कुछ अमल करने का यत्न कोशिश करते हैं। आप दोनों की संगति भी हमें मिली है, लेकिन बीमारी में भी जो स्वप्न आये उन स्वप्नों में न गांधीजी याद आये न आप याद आये। हमारी पत्नी जो हमारी परमप्रिय है और हमारे बच्चे जो हमें परमप्रिय हैं वे भी याद नहीं आये और हमें याद आयी हमारी माता। इसकी क्या वजह है?' हमने कहा, 'आप एक ऐसे दुःख में थे कि जिसमें आपको सांत्वना की जरूरत थी। आपकी पत्नी और आपके बच्चे आपको क्या सांत्वना दे सकते थे? आप ही उनको हमेशा सांत्वना देनेवाले रहे हैं। वे आपको मार्गदर्शन नहीं दे सकते थे। वे सिर्फ प्यारे थे। हम और गांधीजी आपके पूज्य थे। आपने हमें पूज्य माना था। विशेष विचार के प्रसंगों में हमारी सलाह आपको मिलती थी। लेकिन आप सिर्फ आध्यात्मिक सलाह

लेकिन कृष्ण भी कुल के नाते क्षत्रिय था। उसने सेवा का शूद्र का भी काम किया। उन दिनों एक संकेत था कि—शाम को लड़ाई बन्द होती थी। लड़ाई बन्द होने पर अर्जुन सन्ध्योपासना के लिए जाता था और भगवान् कृष्ण घोड़ों की सेवा करने जाते थे। घोड़ों के शरीर में बाण लगे हुए रहते थे। उनको निकालना, नहलाना, खरहरा करना।

सेवा ही सन्ध्या

सेवा ही उनकी सन्ध्या थी। आखिर युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ में भिन्न-भिन्न लोगों को तरह-तरह के काम सौंप दिये—बड़े लोगों को और छोटे लोगों को भी। श्रीकृष्ण आये और काम मांगने लगे। युधिष्ठिर ने कहा : "आपको हम क्या काम दे सकते हैं?" बोले : "आप कहां देंगे तो मैं ले लूंगा।" "आप मांगिये।" और उन्होंने अपने लिए काम ढूंढ लिया। भोजन के लिए लोग बैठते थे। उनकी पत्तलें उठाने का और भूमि को गोबर से लीपने का काम ले लिया। इसलिए तुलसीदासजी ने शब्द का उपयोग करके कहूँगा तो तुलसीदासजी मुझे क्षमा करेंगे और मान्य भी करेंगे—'तुलसी कहूं नहीं कृष्ण सो सेवक नीच निवाज।' हम सभी राजा को सेवक नहीं कहते हैं बल्कि राजराजेश्वर कहते हैं। अभी हमारे एक भाई ने यहाँ कहा कि कृष्ण योग-योगेश्वर थे। लेकिन अपना स्थान उन्होंने सेवक का माना और सबसे बड़ी बात यह कि लोगों ने उनका स्थान सेवक का माना। जब-जब सेवा लेना थी तब कृष्ण से सेवा ली बिना सकोच के ली। इसलिए सारा भारत गोपाल-कृष्ण का नाम-स्मरण करता है। गायों को चरानेवाले गो-सेवक श्रीकृष्ण।

श्रीकृष्ण के जीवन में असंख्य प्रसंग हैं। जैसे रामजी के जीवन में हैं, गौतम बुद्ध के जीवन में हैं, ईसामसीह के जीवन में हैं। वैसे अनेक दूसरे महापुरुषों के जीवन में भी हैं। लेकिन श्रीकृष्ण के जीवन के प्रसंगों में चार प्रसंग मुझे निरन्तर याद आते हैं।

सेवा मूर्ति

एक है सेवा-मूर्ति। बच्चों के साथ, बच्चियों के साथ गोपियों के

बैठते थे और ये पेड़ के ऊपर। लेकिन ने किये आप समान—उनको अपने समान बनाया। 'तुलसी कहूँ नहीं राम सो साहिब शील निधान।'[1] ऐसा स्वामी, ऐसा साहिब! बिलकुल अविनयी, उद्धत, जड़-मूढ़ जीवों की इज्जत करनेवाला! उनसे प्यार से सेवा लेनेवाला! तुलसीदासजी कहते हैं, राम को छोड़कर दूसरा साहिब नहीं हुआ—तुलसी कहूँ नहीं राम सो साहिब शील निधान। इसलिए हम रामराज्य का वर्णन करते हैं कि जो भी हमारी कल्पना में सर्वोत्तम राज्य होगा, उसे हम रामराज्य नाम देते हैं।

तुलसी कहूँ नहीं कृष्ण सा सेवक शील निधान

लेकिन मेरी माँ कहती थी रामचन्द्र सेवा लेते-लेते ऊब गये। किसकी सेवा उन्होंने नहीं ली? सबकी सेवा ली प्यार से ली। सबको समान बनाकर सेवा ली। रामजी ऊब गये। माँ कहती थी कि रामजी ने नया अवतार लिया कृष्ण का और कसम खायी कि अब हम किसीकी सेवा नहीं लेंगे, सबकी सेवा करेंगे। कृष्ण ने ग्वालों की सेवा की, गायों की सेवा की। रामजी ने बन्दरों से सेवा ली, रीछों से सेवा ली। दूसरे अवतार में घोड़ों की सेवा की और सेवा करनेवाले सेवक बने। माँ कहती थी रामजी बड़े भाई थे। उन्होंने सेवा ली। दूसरे अवतार में वे छोटे भाई बने क्योंकि उनको सेवा करना था।

विविध सेवा

युधिष्ठिर के मस्तक पर राज्याभिषेक किया और अपने सिर पर अवसर पर कभी राज्याभिषेक नहीं होने दिया। कंस-मुष्टिक के बाद अपने हाथ में राज्य नहीं लिया, उग्रसेन को सौंपा। द्वारका चले गये तो खुद राजा नहीं बने, बलराम को राजा बनाया। श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने। रामजी ने सबसे सेवा ली। और क्या किसीकी मजाल थी कि रामजी से सेवा लेता और उनसे कहता कि जरा मोटर चलानी है, आप हमारे शोफर बनिये। क्या कोई कह सकता था? उनका अपना एक रुबाब था लेकिन अर्जुन कृष्ण से कहता है तू मेरे रथ का सारथी बनेगा? मोटर का शोफर बनेगा? तो कहते हैं, जी हाँ। कवि वर्णन करता है, अर्जुन क्षत्रिय था

में जकड़े हुए जाति-धर्म विचारों के सम्प्रदायों में जकड़े हुए सम्प्रदायों के गुलाम—ज्ञानी होने पर भी गुलाम—आत्म द्वारा विस्तृत हुए हैं। बोल नहीं सके। ऐसे मौके पर द्रौपदी ने भगवान् को याद किया और कवि लिख रहा है कि भगवान् ने भक्तों की रक्षा के लिए दस-दस अवतार लिये हैं। कहते हैं एक अवतार माना जाता है लेकिन दस अवतार हैं और ग्यारहवाँ वस्त्रावतार लिया है। कपड़े का ही अवतार ले लिया। वे वस्त्र बने। जहाँ कोई काम नहीं आये वहीं वे आये। आमतौर से माना जाता है कि स्त्रियाँ अपनी रक्षा के लिए किसी को रखें। द्रौपदी ने किसी को नहीं रखा था। उसने भगवत् प्रेम रखा था। उस प्रेम के सामने दुःशासन की कुछ नहीं चली। सीतामाता ने वही प्रेम रखा था—भगवत् प्रेम, तो रावण की कुछ नहीं चली। यह सती-मूर्ति और प्रेम-मूर्ति ये चित्र हमारे सामने श्रीकृष्ण ने खड़ा किया।

ज्ञान-मूर्ति

तीसरा चित्र, जहाँ दोनों सेना के बीच रथ खड़ा किया है। उस जमाने का धर्मिष्ठ वीर जिसने गो-ब्राह्मण के प्रसंग में भगवान् शंकर के भी छक्के छुड़ाये थे, वह मोह कर रहा है मोहग्रस्त हो गया है—स्वजन सज्जन और बन्धु दलील करता है। दोनों बाजू स्वजन हैं ऐसा वह कहता है। अगर चीनी फौज होती पाकिस्तान की फौज होती या और कोई फौज होती तो कर मरता या मुकाबला। लेकिन ये तो मेरे ही हैं, ऐसा भेद करके अहिंसा-वृत्ति के कारण नहीं माया और ममत्व के कारण अहिंसा और संन्यास की बात करता है जिसे गीता ने प्रज्ञावाद कहा है। अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे—ऐसा है उसको आरम्भ में। मोहग्रस्त होकर उस मोह को परम कर्तव्य का स्वरूप पहनाकर प्रज्ञावान् ज्ञानी के समान दीखनेवाली बातें वह बता रहा है। उस समय श्रीकृष्ण भगवान् का एक रूप प्रकट हुआ—ज्ञान-मूर्ति। तब वह उपदेश दिया जिस उपदेश ने हिन्दुस्तान की पाँच हजार साल पहले की विचार प्रणाली को प्रभावित किया और गीता पर भाष्य लिखनेवाले एक महान् लिखते कि जिनकी

साथ क्रीड़ा करनेवाले, खेलनेवाले आबालवृद्ध उनकी सेवा करनेवाले। वह लीला इतना प्यारी है कि कृष्ण की 'बाललीला' ही मशहूर है। मैं उसका विस्तार नहीं करूँगा। एक ही बात कहूँगा कि श्रीकृष्ण की अभेद भावनामय लीला का लोगों ने गलत अर्थ लगाया है। गोपियों के साथ श्रीकृष्ण के जो सम्बन्ध थे, उन सम्बन्धों का स्मरण करके शुकदेव जैसे परम ब्रह्मचारी और परम संयमी भी पावन हुए। लेकिन उस विषय में हिंदुस्तान में एक गलत धारणा बन गया। उनका गोपियों के साथ जो सम्बन्ध था उससे अधिक पवित्र सम्बन्ध हो नहीं सकता।

द्रौपदी पर एक विशेष प्रसंग आया था। वस्त्र-हरण हो रहा है। बहुत-कुछ प्रार्थना मिलती सजवा रही है। कोई बाप चली नहीं, तो श्रीकृष्ण को याद कर रहा है, हे नाथ हे रमानाथ! क्या याद कर रही है द्रौपदी? सतीत्व की रक्षा के लिए। पावित्र्य की रक्षा के लिए। प्रार्थना में कहती है हे नाथ हे रमानाथ इस तरह भगवान् के जो नाम लिये द्रौपदी ने, उसके महाभारत में तीन श्लोक है। उसमें कृष्ण का एक नाम पुकारा— कृष्ण गोपीजन प्रिय। अगर कृष्ण का गोपी के साथ गलत सम्बन्ध होता तो पावित्र्य रक्षा के सम्बन्ध में द्रौपदी उसे याद करती? और गोपी जन प्रिय नाम से? इसलिए इसके पीछे कवियों ने जो कुछ विकृत वर्णन किया उसकी जिम्मेवारी उनकी अपनी है, भगवान् कृष्ण की नहीं।

प्रेम मूर्ति कृष्ण

जब कोई बचानेवाला नहीं मिलता पति-देवता भी असमर्थ साबित हुए जनता मूक है पब्लिक ओपीनियन बोल नहीं रहा जा है, मूक है और पब्लिक ओपीनियन के जो बड़े-बड़े नेता भीष्म, द्रोण, विदुर कुछ बात नहीं रहे हैं। सूरदास कह रहा है 'भीष्म द्रोण, विदुर भये विस्मित।' वह पूछ रही है क्या द्यूत में, प्रण में खुद हारने पर पत्नी को दाँव पर लगाया जा सकता है? यह सवाल वहाँ बड़ा पेचीदा हो रहा है। आज का बच्चा भी जवाब देगा कि यह गलत है। लेकिन उस जमाने के अत्यंत ज्ञानी भीष्म द्रोण विदुर—अत्यंत ज्ञानी लेकिन समाज के रीति रिवाज

शंकराचार्य

शंकराचार्य अपने जमाने में अद्वितीय थे। उनके भाष्यों पर अनेक प्रहार हुए। परन्तु जब भीम का बकासुर घूँसे मारता रहा और वह खाना खाता रहा उसने परवाह नहीं की, हँसता रहा। उसने कहा मारो मेरा व्यायाम होगा। खा रहा हूँ वह हजम हो जायगा। फिर देखिए। उसी तरह जितने प्रहार शंकराचार्य पर हुए उतना उनका शरीर मजबूत ही हुआ। आज भी जो तत्त्वज्ञान उन्होंने भारत को दिया है उसके सिवा दूसरे किसी तत्त्वज्ञान का असर भारत पर नहीं है। हमारा अमल दूसरा होता है। कहाँ अमल और कहाँ हम। लेकिन हमारी श्रद्धा ग्रन्थ पर है।

हमारा अयोग्य आचरण

आज ही एक घटना घटी। बड़ी दुःख की घटना है। यहाँ आने के पहले एक जगह हम गये थे। उन दो स्थानों में पाँच मिनट का अन्तर था। हमने वहाँ कहा कि यहाँ हम कृष्ण के बारे में बोलनेवाले हैं। तो यहाँ के लोग यहाँ क्यों न आयें? और एक ही सभा क्यों न हो? सामने स्त्रियाँ बैठी थीं। दोनों की एक सभा होनी चाहिए। फिर हमने सबसे पूछा कि एक ही सभा क्यों न होनी चाहिए? तब सबने कहा कि हाँ, एक ही सभा होनी चाहिए। फिर हमने कहा एक ही सभा हो, तो वहाँ हम बोलेंगे। यहाँ क्या बोलेंगे? तब सभा में एक भाई खड़े होकर बोले कि यहाँ पार्टीबाजी है इसलिए यहाँ के लोग वहाँ नहीं जाते। मैंने कहा तो मैं आपको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। पार्टीबाजी के कारण आप लोग नहीं जाना चाहेंगे, तो मत जाइए। नमस्कार है आपको। जो वहाँ जाना चाहें, वे आ सकते हैं। और मैं वहाँ से चला आया। अब यह पार्टीबाजी! एक पुरुष का आप आदर करते हैं। मुझे आप आदरणीय मानते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के लिए परम आदर आपके मन में है। लेकिन आप उसकी भी कीमत नहीं करते और इसकी भी कीमत नहीं करते। आप सुनाते हैं कि पार्टीबाजी है

बराबरी के महान् भाष्यकार दूसरे किसी ग्रंथ को नहीं मिले। वैसे भाष्यकार तो दूसरे ग्रंथों को भी मिले लेकिन गीता के भाष्यकार विद्वान् भी थे, लोक नेता भी थे, ज्ञानी भी थे, परमज्ञानी भक्त, योगी थे। ऐसे पुरुष, उस उस जमाने के नेता गीता के प्रभाव से प्रभावित हुए और अपने अपने जमाने के लिए अलग अलग एक ही गीता में निकाले। चार यह ज्ञानोपदेश साक्षात् समर प्रसंग में शान्त चित्त से दिया। प्रचंड शस्त्र सम्पात। दोनों ओर की सेनाएँ इकट्ठा करके आमने सामने खड़े हैं। अपने शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डव—ऐसी हालत में अत्यन्त योगयुक्त चित्त से ऐसा निश्चय भव्य उपदेश दिया। इसके बाद भी कहीं पूछा गया था कि वह उपदेश फिर से दीजिये, हम भूल गये। तो श्रीकृष्ण ने कहा आप भूल गये तो हम भी भूल गये। जिस योगयुक्त चित्त से वह बात कही थी, वह योगयुक्त चित्त अब नहीं है, ऐसा भगवान् ने कहा है।

'गीता' के महान् भाष्यकार ज्ञानेश्वर

गीता को कौन भाष्यकार मिले? बहुत नाम हैं। थोड़े ही दूँ। अभी चार नाम बताऊँगा। शंकर और रामानुज ज्ञानेश्वर और गांधी। चारों चार युग के प्रतिनिधि अपने अपने जमाने के नेता। आज महाराष्ट्र में जाकर पूछिये ज्ञानदेव से बढ़कर कोई नाम वहाँ नहीं है। दूसरा नाम जानते तक नहीं। अत्यन्त नम्र होकर गीता का भाष्य वे लिखते हैं। क्या कहते हैं? माझिया सत्यवादाचे तप वाचा केले बहुत कल्प—अनेक जन्मों में सत्य बोलने की तपस्या मेरी वाणी ने की है। ध्यान देने लायक शब्द है। मामूली नहीं है। ज्ञानेश्वर महाराज बोल रहे हैं—मेरी वाणी ने सिर्फ इस जन्म में नहीं, अनेक जन्मों में सत्य बोलने की तपस्या की है। कितने लोग ऐसे निकलेंगे जो कहेंगे कि इस जन्म में भी हम झूठ नहीं बोले। माझिया सत्यवादाचे तप वाचा केले बहुत कल्प—और उसके परिणामस्वरूप गीता का भाष्य लिखने का भाग्य मुझे मिला ऐसा वे लिखते हैं।

तरह गर्जना करनेवाले पाण्डित्य की और अगर ज्ञान की भाषा व यहाँ ताकत है। वह गर्जना सब भाषा वहीं खत्म है जहाँ गीता के सामने वे खड़े हैं। कहते हैं कि ज्ञानेश्वर अत्यन्त गहन है। ज्ञानेश्वर ने इसका विवरण किया, जिस पर भी वह अर्थ अभी दुर्गम हो रह गया। इसलिए इसका अर्थ के प्रकाशन के लिए मेरे द्वारा प्रयत्न किया जा रहा है। इतने नष्ट हो गये!

रामानुज

रामानुज कोई सामान्य पुरुष न थे। हमारे यहाँ उत्तमोत्तम ज्ञानी, परमज्ञाता और परम भक्त माने जाते हैं और वे हमारे गिराधार्य हैं। तुलसीदासजी और कबीर भी रामानुज के शिष्य थे। यह इतना प्रसार उनकी भगवद्-भक्ति का था। सबका भक्त उनके सम्प्रदाय में थे। वे गीता के भाष्यकार थे।

गाथा : भारतीय नेता

इस जमाने में महात्मा गांधी, तिलक, अरविन्द ये नेता थे—हिन्दुस्तान के बहुत बड़े नेता। उनको अपने नेतृत्व में ताकत का पता मालूम हुआ, तो गीता का साक्षात्कार करके ताकत प्राप्त की। खैर! नेताओं का नित्य, निरन्तर प्रेरणा देनेवाली भगवद्-गीता!

गीता नित्य-नूतन

ज्ञानेश्वर महाराज ने ज्ञानेश्वरी में पार्वती-परमेश्वर संवाद लिया है। गीता का स्वरूप-वर्णन में कह रहे हैं। 'देव हर म्हणे देविजे। देवी जसे कां स्वरूप तुझें। तसे हे नित्य नूतन देखिजे गीतातत्त्व।' हे देवी, तू मायादेवी पार्वती महादेवी, जैसे तेरे स्वरूप का निर्णय हो नहीं सकता, उसी तरह यह गीता-तत्त्व नित्य-नूतन है। माया का स्वरूप क्या कहा जायगा? वह बदलता रहता है। हजारों रूप माया लेती है 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इन्द्र माया के कारण अनेक अनेक रूप धारण करता है। सहस्र-रूप अनंत अनंत रूपधारिणी माया—जैसे गीता-तत्त्व नित्य-नूतन है। 'तसे हे नित्य नूतन देखिजे गीता-तत्त्व।' गीता का रूप

इसलिए वहाँ कहा जायगा। जहाँ अद्वैत का विचार चला, वहाँ इसके क्या मानी है?

यही लोग कहते हैं भारत के अपने ही लोग कि अगर हिन्दुस्तान पर चीन का हमला होगा, तो हम सब एक होंगे। अरे कम्बख्तो, एक होने के लिए क्या हमले की जरूरत है? सोचने की बात है। हम बिलकुल नालायक हैं। अद्वैत के लिए कोई योग्यता हमारी नहीं है।

शंकराचार्य की महत्ता

फिर भी आज भारत पर किसी तत्त्वज्ञान का प्रभाव है, तो वह शंकर के तत्त्वज्ञान का है। उस जमाने में वे कितने पराक्रमी पुरुष थे। हम सोचते हैं वे तत्त्वज्ञानी थे, महाकवि थे, ब्रह्मचारी थे, योगी भी थे, संन्यासी भी थे और परिश्रम कितना करते थे। सारे भारत में पैदल पैदल घूमे। लोग कहते हैं कि बाबा पैदल घूम रहा है, लेकिन शंकराचार्य ऐसे जमाने में घूमे जिसमें रास्ते अच्छे नहीं थे। क्या उनके आगे पीछे मोटर चलती थी? उस जमाने का आठ साल का लड़का पैदल-पैदल निकलता है और कश्मीर तक पहुँचता है। हम श्रीनगर पहुँचे थे। वहाँ शंकराचार्य के नाम का एक पहाड़ है। वहाँ—पहाड़ पर—शंकराचार्य समाधि लगाते थे ऐसी कहानी लोग सुनाते थे। वे कहते थे कि शंकराचार्य के बाद आप आये हैं। मैंने कहा, दूसरे भी आये थे, लेकिन व्यापक धर्म-कार्य लेकर नहीं आये थे। मेरा कार्य व्यापक धर्मकार्य इन लोगों ने मान लिया और शंकराचार्य का स्मरण करके मैंने कहा, 'आप मेरा बहुत आदर कर रहे हैं, जिसके लिए कोई योग्यता मैं अपने में नहीं देखता हूँ।'

गर्जना करनेवाले गीता के सामने नम्र बने

ब्रह्मसूत्र का भाष्य करते हुए शंकराचार्य कहते हैं 'वयं ब्रूमः। प्राप्ते वदामः' हम बोलते हैं, हम कहते हैं, ऐसी गर्जना करते हैं, लेकिन जब गीता पर भाष्य करने का प्रसंग आया, वहाँ कहते हैं, उस गीता के अभिप्राय को समझने यत्न किया जा रहा है। इसलिए प्रयोग बदल दिया। प्रयोग में कहा। वयं ब्रूमः। हम बोलते हैं, हम आगे पूछते हैं हम

प्रमाथेत ? लेकिन लक्ष्मण ने एक बार सवाल पूछा। आजकल तो प्रश्न पूछे जाते हैं। न सेवा है, न मर्यादा न सब्र। अखबारवाले आते हैं और प्रश्न पूछते हैं जैसे कोई मुजरिम हो। झट झट प्रश्नों का प्रहार करते हैं और उनके जवाब भी उनको चाहिए। लेकिन न यहां की हिम्मत लगती थी। बारह साल की यात्रा में साथ रहा सेवा की और अपने आप तन्मय हो गये रामजी में लक्ष्मण। तुलसीदासजी वर्णन करते हैं लक्ष्मण का। धन्य हैं लक्ष्मणजी ! रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका। रामजी की यशोध्वजा के लिए यश रूपी झंडे के लिए लक्ष्मणजी डंडे के समान थे। झंडा ऊंचा रहे हमारा झंडा ऊंचा रहे ऐसा सब कहते हैं। लेकिन डंडा ऊंचा रहे हमारा यह कोई कहता है ? कोई नहीं कहता। नाम झंडे का नाम डंडे का। बिना डंडे के झंडा होगा ऊपर ? जब डंडा मजबूत होता है तब उसके सिर पर झंडा लहराता है। डंडे का नाम नहीं वह तो सेवा कर रहा है। नाम झंडे का। रामजी का नाम लक्ष्मण का नाम नहीं। रामजी का यश झंडे के समान और लक्ष्मण का यश डंडे के समान। ऐसा तुलसीदासजी लिखते हैं। अद्भुत हैं तुलसीदासजी। लक्ष्मण भी अद्भुत रामजी भी अद्भुत और हम भी अद्भुत, जिनको यह भाग्य हासिल हुआ है। एक बार ही रामजी को सवाल पूछा गया और वही रामजी ने उपदेश दिया और अंत में चाव व चाव छोड़कर बन गये थे तब दो-चार बातें बताया था। उन्होंने ज्यादा उपदेश नहीं दिया। अमल किया तो उनका नाम ही नाम चला। भगवान कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया तो वह उपदेश चला। ये दो चीजें हैं जो भारत की ताकत है और दुनिया अगर पहचाने तो दुनिया की ताकत है। भगवान् का नाम और साम्ययोग का उपदेश ये दो चीजें हैं।

अत्यन्त अनासक्त

आपके सामने भगवान् के तीन प्रसंग रखे। सेवामूर्ति प्रेममूर्ति ज्ञानमूर्ति। आखिरी प्रसंग का वर्णन करके मैं समाप्त करूंगा। कौरवों का संहार हुआ, पांडवों का भी हुआ। पांच पांडव इधर उधर चले गये। बच

नित्य-नूतन है। इसलिए किसीने गीता को कर्मयोगशास्त्र कहा, किसीने ज्ञानयोगशास्त्र कहा इत्यादि सब फिजूल बातें हैं। गीता वह शास्त्र है, जो आप चाहते है। जब आपके लिए जिस शास्त्र की जरूरत होगी वह शास्त्र गीता आपके लिए बन बनेगा। आज आपके लिए जैसा आप चाहते हैं वैसा गीताशास्त्र बनेगा। नित्य नूतन है गीताशास्त्र' गानन्द महाराज ने कहा। मैं मानता हूँ गीता को लोकप्रिय बनाने में ज्यादा-से-ज्यादा काम किसीने किया है तो वह गानन्द महाराज ने किया है। उनके कारण गीता घर घर में पहुंच गया। इतना लोकप्रिय करने में उन्होंने सब लिखा अपने अनुभव के साथ। इस जमाने में नेताओं पर जिक्र मैं कर चुका।

रामजी का नाम और कृष्ण की गीता

इतना परम प्रिय अत्यन्त ज्ञान अर्जुन के निमित्त से भगवान् ने दिया। इसीके आधार पर हम भगवान् कृष्ण की वन्दना करते हैं। कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ऐसी कथा है। हम मानते हैं कि हिंदुस्तान का उद्धार करनेवाली सबसे बड़ी कौनसी चीजें हैं? श्रीकृष्ण की गीता और रामजी का नाम—ये दो चीजें है जिनकी बराबरी की कोई तीसरी चीज नहीं मिलेगा। रामजी ने बहुत उपदेश नहीं दिया वे मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। वे कहते थे 'हमारे बड़ों ने भगवान् ने मर्यादा बताया है इसलिए मुझे क्या बताना है? मुझे ज्यादा कुछ कहना नहीं है। मुझे तो उस पर अमल करना है। इसलिए उन्होंने मर्यादा दिखाया उपदेश नहीं दिया है। एक मौके पर उपदेश दिया है। तुलसीदासजी वर्णन करते हैं एक बार प्रभु सुख आसीना एक वक्त जंगल में भटकते हुए अत्यन्त एकान्त में शान्त स्थान में प्रसन्न चित्त से प्रभु बैठे थे। सुखमय अवस्था में बैठे थे। लछमन कहे वचन छलहीना। उस वक्त लक्ष्मण ने सवाल पूछा और उसका जवाब रामजी ने दिया है, जो तुलसीदासजी ने डेढ़ पृष्ठ में दिया है। वही एक प्रसंग है जिस समय उन्होंने कुछ उपदेश दिया। लक्ष्मण निरंतर उनके साथ रहते थे लेकिन कभी प्रश्न पूछा नहीं था। वे देखते थे कि प्रभु कैसे बैठते हैं कैसे बोलते हैं—किंकरोति किं

पा रहे हैं या उसे काट रहा है वह उसे काट रहे हैं। बलराम भी दुःखित होकर चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ से दूर चले गये और एक वृक्ष के नीचे बैठे। इधर संहार चल रहा है और वे दूर चले गये। पेड़ के नीचे जाकर ध्यानस्थ बैठे, घुटने पर पाँव रखा, आराम से बैठे हैं। सूर्य प्रकाश उनके शरीर पर पड़ा था। उनके पाँव को चमकते हुए देखकर दूर से एक व्याध ने समझा कि शायद हिरण होगा और उसने बाण मारा। खून की धारा बहने लगी। शिकार पकड़ने के लिए नजदीक आया तो देखा भगवान् श्रीकृष्ण को उसने बाण मारा है। बहुत दुःखी हुआ, नजदीक पहुँचा। कृष्णजी बोल रहे हैं, 'मा भी जर।' व्याध का नाम जरा था। "जर, मा भी। तूने मेरी इच्छा पूर्ण की। मुझे यह शरीर छोड़ना ही था। इसलिए तू सद्गति में जायेगा। तुझे सद्गति प्राप्त होगी। अधोगति नहीं मिलेगी।" व्याध बेचारा पश्चात्तापदग्ध था। परमेश्वर की कृपा उस पर हुई थी। जरा तो स्वर्ग चला गया लेकिन एकनाथ महाराज कहते हैं कि प्रभु ने अन्तिम समय में हम भक्तों के लिए क्षमा का आदर्श दिखाया। परम क्षमा का दर्शन कराया।

ईसामसीह की कहानी है। उन को फाँसी पर लटकाया गया था। हाथ-पाँव बाँधे थे, कीलें ठोंकी थीं, तीव्र वेदना हो रही थी। आखिर आत्मा आर्त था! यानी 'Eli, Eli lama Sabahtni'

भाषा हिब्रू है। आया है न्यू टेस्टामेन्ट में। वे भगवान् से कहते हैं कि हे भगवन्, क्या तूने मेरा त्याग किया? क्या तू मुझे छोड़ रहा है? और एकदम याद आया ईसामसीह को कि भगवान् ने मुझे छोड़ा नहीं है, भगवान् तो अन्तर्यामी बैठे हैं। वे त्यागते नहीं। फिर कहा, 'Thy will be done'—तेरी इच्छा जैसी होगी वैसा होगा और आखिर जिन्होंने उनको सजा दी उनके लिए कहा कि प्रभु उनको क्षमा करेगा, क्योंकि 'They know not what they do'—वे जानते नहीं वे क्या कर रहे हैं। इसलिए हे प्रभो, उनको क्षमा कर। ऐसा क्षमा का आदर्श ईसा ने दिखाया। ईसा से एक बार पूछा गया था कि कितनी बार क्षमा करना चाहिए? उसने कहा था, सात बार। फिर पूछा सात

चिरंजीव और भगवान् कृष्ण। बाकी सब मारे गये। बच्चे-बच्चे कत्ल हुए। एकाध बच्चा रह गया। ऐसी हालत में गांधारी से मिलने भगवान् जा रहे हैं। गांधारी हमेशा आँखों पर पट्टी बाँधे रखती थी। पति धृतराष्ट्र अंधे थे। उनकी सहानुभूति से वह आँखों पर पट्टी बाँधती थी। बहुत शान्त और सच्ची थी। दुर्योधन की बुराई में कभी उसने उत्तेजन नहीं दिया। उसका पक्षपात हमेशा धर्म के लिए रहता था। उसके दर्शन के लिए प्रभु गये युद्ध के अन्त में। उसके सौ के सौ लड़के मारे गये हैं। बहुत व्यथित हुई थी और श्रीकृष्ण सामने खड़े हुए। उन्होंने नमस्कार किया। गांधारी कहती है क्या यह सब तुमने करवाया? पांडव गये कौरव गये तो क्या पाया तुमने? यानी शाप दिया। श्रीकृष्ण हँसे और बोले यद् भावि तद् भविष्यति। जो होनेवाला है वह होगा। इतने बेफिक्र थे।

राजा रविवर्मा ने कई अच्छी तसवीरें बनायी हैं। उन सब सुन्दर तसवीरों में हमें जिस तसवीर ने खींचा वह तसवीर यही है, जिसमें धृतराष्ट्र दरबार में बैठे हैं माँग की जा रही है पांडवों की तरफ से कि आधा राज्य दो। और कृष्ण इतने बेपरवाह यहाँ बैठे हैं। उस वक्त दुर्योधन गालियाँ दे रहा है धृतराष्ट्र चुपचाप बैठा है सुन रहा है। कुछ पक्षपात पांडवों के लिए कुछ धर्म विचार की सूझ। दोनों में खींचातानी हो रही है और वह सुन रहा है। सारे क्षुब्ध हैं। सबके चेहरे क्षुब्ध दीखते हैं जहाँ सज्जनों को गालियाँ दी जा रही हैं। कृष्णजी कुर्सी पर बैठे हैं। उनके नजदीक सात्यकि बैठा है। वह एकदम क्षुब्ध होता है और तलवार खींचकर आगे बढ़ना चाहता है। और उस हालत में भगवान् ऐसे बैठे हैं मानो कुछ भी नहीं हो रहा है। उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं। सात्यकि का हाथ जरा पकड़ लिया उसे रोकने के लिए। यहाँ भी अत्यन्त शान्त और कह दिया यद् भावि तद् भविष्यति। आखिर जो होनेवाला है सो होगा।

परम समाधान्

आखिर में प्रसंग आया—यादव आपस में लड़ रहे हैं शराब पी

था रहे हैं यह जो काट रहा है, वह उसे काट रहे हैं। बलराम भी दु खित होकर चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण वन से दूर चले गये और एक वृक्ष के नीचे बैठे। इधर संहार चल रहा है और वे दूर चले गये। पेड़ के नीचे दाहर ध्यानस्थ बैठे घुटने पर पांव रखा आराम से बैठे हैं। काफी माग उनके शरीर पर पड़ा था। उनके पाव को आरक्त वर्ण देखकर दूर से एक व्याध ने समझा कि शायद हिरण होगा और उसने बाण मारा। खून की धारा बहने लगी। शिकार पकड़ने के लिए नजदीक आया तो देखा भगवान् श्रीकृष्ण को उसने बाण मारा है। बहुत दुखी हुआ, नजदीक पहुंचा कृष्णजी बोल रहे हैं मत रो अरे। व्याध का नाम जरा था। ? पहले था भा ? पूर्व जन्म का पुण्य था। मुझे यह शरीर छोड़ना ही था। इसलिए तू सद्गति में जायगा। तुझे सद्गति प्राप्त होगी। प्रधानि नाम मिलेगा। व्याध बेचारा पश्चात्ताप था। परमेश्वर की कृपा उस पर हुई था। उस को स्वर्ग जाना ही था लेकिन एकनाथ महाराज कहते हैं कि प्रभु ने अन्तिम समय में हम सबको के लिए क्षमा का आदर्श सिखाया। परम क्षमा का दर्शन कराया।

ईसामसीह का कहना है। उन को क्रॉस पर लटकाया गया था। हाथ-पाँव बांध थे कीलें ठोका था तीव्र वेदना हो रही थी। आखिर शब्द जो था ? वाले Eli, Eli lama Sabaktni

भाषा हिब्रू है। गायन है ओल्ड टेस्टामेन्ट में। वे भगवान् से कह रहे हैं कि हे भगवन् क्या तूने मेरा त्याग किया ? क्या तू मुझे छोड़ रहा है ? और एकदम याद आया ईसामसीह को कि भगवान् ने मुझे छोड़ा नहीं है भगवान् तो अन्तर्यामी बैठे हैं। वे छोड़ते नहीं ! फिर कहा Thy will be done —तेरी इच्छा जैसा होगी वैसा होगा और आखिर जिन्होंने उनको सजा दी उनके लिए कहा कि प्रभु उनको क्षमा करना क्योंकि They know not what they do —वे जानते नहीं वे क्या कर रहे हैं। इसलिए हे प्रभो उनको क्षमा कर। ऐसा क्षमा का आदर्श ईसा ने सिखाया। ईसा से एक बार पूछा गया था कि कितनी बार क्षमा करना चाहिए ? उसने कहा था सात बार। फिर

दफा भी क्षमा करने पर काम न हो तो ? तो बोले "Seven times seven' —उनचास बार। अब उसके आगे पूछने को कुछ रहता ही नहीं। याने जितनी दफा करना पड़े उतनी बार क्षमा ही किया करो— क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ? क्षमा ही तुम्हारा शस्त्र है। जहाँ हाथ में क्षमा का शस्त्र है वहाँ दुर्जन क्या करेगा ? यह ईसा का बोध है और उसीके अनुसार ईसा का शरीर गिरा। ईसामसीह ने कहा कि ये जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं इसलिए हे प्रभु इन्हें क्षमा कर। भगवान् कृष्ण ने कहा [illegible] को भी जरे। तुम डरो मत, मेरी इच्छा ही थी। तुम्हें सद्गति मिलेगी। और उन्होंने अपने वध को प्रसन्नता से स्वीकार किया।

परम क्षमावान् थे श्रीकृष्ण भगवान्, दयामूर्ति, प्रेममूर्ति, ज्ञानमूर्ति, क्षमामूर्ति। ये चार अंग हमेशा आँखों के सामने रहते हैं और आधार हैं।*

इंदौर
१६-८-'६०

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर

---

* यह प्रवचन करते-करते हर दो-तीन मिनट पर विनोबाजी का गला भर आता था। वाणी अवरुद्ध हो उठती थी। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा तो प्रवचनभर ही बहती रही।

१४ ·

भगवत्-शरणता की आवश्यकता

स्मृति कैसे काटें ?

साधकों के सामने दो समस्याएं रहती हैं (१) कुसंस्कार कैसे जायें और (२) सुसंस्कार कैसे आयें। जब यह ध्यान में आता है कि जान बूझकर नहीं, स्व प्रयत्न से नहीं, तो भी परिस्थितिवश कुछ सुसंस्कार प्राप्त होते हैं और कुछ कुसंस्कार भी। जितने हम नये संस्कार बनाते हैं वे अगर अच्छे बनायें तो उनसे कुसंस्कारों को काट सकते हैं और कुसंस्कार खत्म हो सकते हैं। अच्छे संस्कार बनाना भी कठिन है। उनके जरिये कुसंस्कारों को काटना भी कठिन है। फिर भी यह पुरुषार्थ से सधता है। उससे भी कठिन कार्य है उन संस्कारों की स्मृतियों को काटना। मान लीजिये, मेरे पास सात काले कुसंस्कार थे और फिर मैंने सात काले सुसंस्कार हासिल किये तो सात-सात शून्य। यह हो सकता है। नये सात शुभ संस्कार बनाये जायें तो उनके बदले पुराने सात कुसंस्कार खत्म हो सकते हैं। लेकिन उनकी जो स्मृतियाँ हैं वे कैसे खत्म हों ?

स्मृति में अंकगणित नहीं, बीजगणित

हमने पराधीनता मिटाकर स्वाधीनता प्राप्त की, लेकिन रेकार्ड में पराधीनता मिट नहीं सकती। रेकार्ड में पराधीनता को भी लिखा जायगा और उसके बाद की स्वाधीनता को भी। विचारों में से पराधीनता गयी, लेकिन स्मृति से नहीं गयी। स्मृति में अंकगणित नहीं होता, बीजगणित होता है। अ—ब = जो कुछ बनता है, उसमें अ और ब दोनों कायम रहते हैं। इसलिए पुरानी खराब स्मृतियाँ याद आती हैं और उनको मिटाने की बात करें तो और याद आती हैं। अब [illegible]

सामने अत्यन्त कठिन समस्या है कि स्मृतियाँ कैसे हटें ? बारम्बार प्रयत्न से हम कुसंस्कारों को तो हटा सकते हैं लेकिन उनकी स्मृतियाँ कैसे हटें ?

मनुष्य के अपने पराक्रम से स्मृतियाँ जलती नहीं

जो लोग नास्तिकता की बात करते हैं उनके पास दूसरा उत्तर नहीं है। वे जानते ही नहीं कि सारी बातें कितनी गहरी हैं। वे समझते हैं कि मामूली व्यवहार में ईश्वर की क्या जरूरत है। लेकिन वे समझते नहीं कि स्मृतियों को हटाने जाओ तो दोहरी स्मृति बन जाती है। स्वप्न में भी वह आती है। इसलिए यहाँ पर ईश्वर-कृपा का सवाल आता है। साधक के सामने अत्यन्त कठिन समस्या यही है कि निरन्तर शुभ-संस्कार हासिल करने की कोशिश करने पर भी चालीस साल पहले एक खराब शब्द सुना था, वह आज याद आता है। इन स्मृतियों को हटाने के लिए भगवान् ने मरण की योजना की है ताकि दूसरे जन्म में पुराना कुछ भी याद न रहे। हम लोग को अग्नि में जला देते हैं तो खतम हो जाता है। लेकिन यह ईश्वरीय योजना है। अपने पुरुषार्थ से वे स्मृतियाँ नहीं जलती हैं।

स्मृतियों को हटाने की युक्ति

स्मृतियाँ खतम हों तो उनका परिणाम रहता है जो नया स्मृति बनकर आता है। इसलिए मुक्ति लाभ नहीं होता। आपसी सम्बन्धों में हम पूर्व-स्मृतियों को हटा सकें तभी भाईचारा सम्भव होगा। आज हमने इसके लिए एक तरीका अपनाया। बचपन में भी हम ऐसा ही करते थे। उस समय हमें कविता लिखने का शौक था। तीन-चार दिन बहुत मेहनत करके अच्छी कविता बनी ऐसा मालूम होता और मुझे सम्पूर्ण समाधान होता तो मैं वह कविता अग्निनारायण को समर्पित कर देता था। फिर जब मैं काशी गया, तो कविता लिखकर गंगाजी को अर्पित कर देता था। आजकल बहुत-से कवियों की कविताएँ छपती हैं। मेरा ख्याल है कि मेरी भी कविताएँ छपतीं, तो उनको प्रथम नहीं, तो दोयम दर्जा तो माना हो जाता। लेकिन मैंने सोचा कि मुझे प्रथम दर्जा मिल सकता है

स्मरण पक्का रह जाता है। व्यक्तिगत साधना में और सामूहिक संस्थाओं में भी यही झमेला खड़ा होता है। मैंने आज गाड़ियों से कहा कि पत्रों के कागज तो जल गये और पुराना सब स्मृतियाँ भस्म हो गया। यदि आया तो भी धालना नहीं है। इस तरह मैं मुक्त मनसे आपके सामने विराजमान हूँ।

प्रभु शरणता

जब हम सोचते हैं कि सब ये तो इन स्मृतियों को भस्म जलाया जाय तो वहीं ईश्वर आता है। और किसी जगह ईश्वर को दखल देने की जरूरत नहीं है। जला ने निजरा की बात की है। एक एक मरण में सब भस्म हो जाता है मरते मरते अनेक जन्मों में सब स्मृतियाँ खत्म होती हैं, ऐसा माना है। लेकिन हम इसी जन्म में सबको काटना चाहते हैं। इसके लिए हमारे पास कोई साधन चाहिए। यहाँ पर वह साधन ईश्वर आता है।

जो पिंड में, वही ब्रह्माण्ड में

सारी शक्तियाँ पिंड में नहीं हैं ब्रह्माण्ड में भी कोई शक्ति है। कुछ देखने की शक्ति आँख में ही नहीं है, शक्ति सूर्य में भी है। सारी शक्ति हमारे फेफड़ों में नहीं है, कुछ शक्ति आकाश में भी है। इसी तरह हमारे शरीर में जो अन्तर्यामी है जिसे हम आत्मा कहते हैं वैसे ब्रह्माण्ड में भी कोई अन्तर्यामी होगा जिसकी हम आत्मा को मदद मिल सकती है। जैसे सूर्य की मदद आँख को मिलती है आकाश की मदद फेफड़ों को मिलती है इस तरह ब्रह्माण्ड की शक्तियों की मदद पिंड को मिलती है। इसलिए पिंड में जो अन्तर्यामी है उसको जब नव मदद की जरूरत हो तब वह ब्रह्माण्ड से मिलती है। जब फेफड़े में तकलीफ हो तो खुली हवा के लिए किसी हिल-स्टेशन पर भेजा जाता है। इस तरह बाहर से मदद हासिल करने का एक साधन होता है। उसकी जरूरत जब तक नहीं महसूस होती है तब तक वह मदद मिलती है।

ईश्वर की मदद जरूरी

स्मृतियों को हटाने के लिए ईश्वर की आत्मभाव से प्रार्थना करना पड़ता है। स्थूल को जलाने का काम हम करते हैं। लेकिन हमारी सारी शक्ति

भला करने पर भी काम न बनता हो तो ईश्वर की मदद माँगनी पड़ती है। जयप्रकाशजी ने एक लेख लिखा था—द मॉटिव फॉर गुडनेस। इस पर कुछ लोगों ने आक्षेप उठाया कि गुडनेस के लिए ईश्वर की क्या जरूरत है? कुछ हद तक यह आक्षेप सही भी है। वहाँ पर ईश्वर निष्ठा की जरूरत अनिवार्य नहीं है। यह काम तो हम एथिक्स (नीतिशास्त्र) से सिखा लेते हैं। लेकिन स्मृतियों को कैसे भुला जाय। भूलने की कोशिश करते हैं और हम हार जाते हैं। इसलिए इस समस्या के समाधान में ईश्वर की जरूरत महसूस होती है।

धर्म यानी पुराने अनुभवों का सार

प्रश्न क्या व्यक्तिगत जीवन में स्मृतियों का कोई स्थान नहीं है?

उत्तर कुस्मृतियों का कोई स्थान नहीं है, अच्छी स्मृतियों का स्थान है। उनसे भी मुक्त होना आखिरी चीज है। लेकिन कुस्मृतियों से व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में मुक्त होना आवश्यक है। इस दृष्टि से इतिहास बहुत ही खराब विषय है। वह स्मृतियों को जाग्रत रखता है। हमें अच्छा बुरा सारा याद रखना है यह ख्याल गलत है। हमें तो सार लेना चाहिए। धर्म तब बना जब पुराने अनुभवों का सार इकट्ठा हो गया। लेकिन पुराने भले और बुरे—सबका रेकार्ड यानी इतिहास है। आखिर इतिहास याद करके करना क्या है? सारे इतिहास का आखिरी फल मैं स्वयं हूँ। इसमें सारा इतिहास भरा ही हुआ है। उस किताब में लेने में क्या रखा है। सारी प्रेरणा मुझमें है ही। कभी-कभी उपन्यास इतने असरकारक होते हैं कि वे हमेशा याद आते हैं जैसे अपने जीवन की घटनाएँ और इतिहास याद आता है। वैसे ही झूठी कहानी भी याद आती है। इसलिए यह सारा मामला बहुत ही पेचीदा हो गया है।

प्रश्न सेवा का उद्भव कैसे होता है?

उत्तर सेवा-वृत्ति अन्दर ऊँची प्रेरणा से नहीं आती है। हमने पहले से बहुत सेवा पायी है। हम आसमान से नीचे टपके ऐसा होता तो फिर सेवा भावना आये या न आये यह सवाल पैदा होता। जो खास

मान से नीचे टपकेगा यह अप्पासाहब जैसा भंगी-काम नहीं करेगा। हमें समझना चाहिए कि हमने बचपन में भर भरकर सेवा पाया है इसलिए अब हमें सेवा करनी है।

प्रश्न छोटे-छोटे क्षेत्रों में हम क्या करें ?

उत्तर मैंने एक बार कहा था कि हमारी आज यह हालत है कि जिन पर हम प्रेम करते हैं वे हमारे कर्म के साथी नहीं हैं और जो कर्म के साथी हैं वे प्रेम के साथी नहीं हैं। यह भेद मिटाना चाहिए। जहाँ कर्मक्षेत्र और प्रेमक्षेत्र एक बनता है, वहीं धर्मक्षेत्र होता है। जिनसे प्रेम बना है उन्हें अपने कार्य में साथ लाना चाहिए। जिनका कार्य में साथ हो गया है उन पर प्रेम करना चाहिए। इस तरह की दोहरी प्रक्रिया करनी होगी। प्रेमक्षेत्र और कर्मक्षेत्र एक हो जायगा तब धर्मक्षेत्र बनेगा। कुछ लोगों के जीवन के तो और भी टुकड़े हो गये हैं। एक आफिस का साथी दूसरा टेनिस का साथी तीसरा घर का साथी इस तरह उनके अलग अलग साथी होते हैं। उस व्यक्ति की हर दफा रफ्तार अलग अलग दीखेगा। अपने प्रेमीजनों को कर्म के साथियों के साथ मिलाने की कोशिश हमें छोटे क्षेत्रों में करनी चाहिए। कार्यकर्ता अपने गाँव पसंद (चुन) करें यह बहुत ही स्थूल विचार है। केवल आर्थिक दृष्टि से, सम्पत्ति बाँटने भर से काम नहीं होगा। ऐसा तो यह चाहिए कि हमारे प्रेमीजनों के साथ सब प्रयोग प्रेमीजन बनें। यह प्रयोग जितना सफल होगा उतना सह-जीवन का प्रयोग सफल होगा। आज यह होता है कि बेसिक टीचर की पत्नी को बेसिक तालीम कुछ भी नहीं मिलता है। इसलिए वह स्वयं बेसिक टीचर नहीं बन सकती। फिर बच्चों को क्या संस्कार मिलेगा? जिसकी पत्नी अलग है उसके बच्चे तो अलग हैं ही। इसलिए होना यह चाहिए कि प्रेमक्षेत्र और कर्मक्षेत्र एक हो जाय।

इन्दौर —राजस्थान-समग्र-सेवा संघ की बैठक में
१५ अगस्त ६०

२५

सन्त-समूह घनो

भगवत्-चिंतन से आध्यात्मिक स्नान

इधर आठ-दस दिनों से हम विष्णुसहस्रनाम पढ़ रहे हैं। प्रतिदिन यह क्रम चलता है। उसका हमने एक कोष भी बना लिया है। उसका चिंतन चल रहा है। बहुत आनंद आता है। जैसे स्नान करने से शरीर निर्मल होता है और प्रसन्नता मालूम होती है, वैसे ही भगवत्-चिंतन से आध्यात्मिक स्नान होता है और बहुत प्रसन्नता का अनुभव होता है। प्रसन्नता क्या चीज है और किस तरह आती है, इसका चिंतन हम नहीं करते। लोग हजारों और चर्चा करेंगे, तो भी उसकी मीमांसा नहीं होनेवाली है। अनेकों ने मीमांसा की है, लेकिन उसमें किसीको पता न मिला।

निद्रा कैसे आती है?

परमेश्वर के स्मरण से, नाममात्र के उच्चारण से प्रसन्नता क्यों आती है, यह गहरा विषय है। एक मामूली-सी बात है। निद्रा की अनुभूति सबको होती है, लेकिन वह निद्रा किस तरह आती है, इसकी कोई मीमांसा अभी तक नहीं हुई है। तत्त्वज्ञानियों के अनेक ग्रंथ पढ़े हैं, जिनमें कहा गया है कि निद्रा में क्या होता है। उसका वर्णन और व्याख्या कुछ भी कीजिये, उसकी कुंजी हाथ नहीं आयी है। योगशास्त्र में कहा है: अभाव-प्रत्ययालम्बना वृत्ति —निद्रा एक वृत्ति है, जिसका आधार अभाव की अनुभूति है। उपनिषद् कहता है कि निद्रा में जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है और अज्ञान की उपाधि चित्त को लगती है। सील किया हुआ लोटा पानी में लीन होता है, उसी तरह जीवात्मा अहंकार-वेष्टित आत्मा परमात्मा में लीन होता है। अगर वह अहंकारवेष्टित न हो, तो

घना में पानी मिल जायगा। मुक्ति का अनुभव आयेगा। लेकिन निद्रा में शीतबद्ध सोना पानी में डालने से जैसा अनुभूति होती है यानी मुक्ति का इतना अनुभव आता है। वैज्ञानिकों ने निद्रा की ज्यादा व्याख्या की है और कहा है कि निद्रा में भी जागृति होती है और जागृति में भी निद्रा। निद्रा में जागृति का एक क्षण होता है और जागृति में निद्रा का एक क्षण होता है। जागृति में बहुत घना जागृति रहता है लेकिन निद्रा का थोड़ा अंश रहता है। निद्रा में एक क्षण गाढ़ निद्रा का तो दूसरा क्षण थोड़ा भी जागृति का आता है। उसमें अलावा स्वप्न भी आते हैं तो जागृति का समाना बना जाता है और जागृति में थकान आवे तो निद्रा का अभाव दिखता है। उपनिषद् की अनुभूति योगशास्त्र का आधार आदि सब मिलकर भी निद्रा की व्याख्या नहीं हो सकती। धन्ना ने कहा है जब चाहो तब लोला खिचवा — इस तरह जब चाहे तब निद्रा और जब जब जागृति—यह अनुभूति सबको नहीं होती।

विष्णु सहस्रनाम से स्नान, गीता से पोषण

जहाँ निद्रा की यह बात है वहाँ भगवन्नाम का चित्त पर क्या असर होता है? नाम-स्मरण से प्रसन्नता कैसे निर्माण होती है यह कौन बतायेगा? मैं गीता का परम भक्त हूँ। फिर भी गीता के पठन का मुझ पर वह असर नहीं होता है, जो विष्णु-सहस्रनाम के पठन का होता है। गीता में चिंतन मनन होता है। जीवन के साथ उसका सम्बन्ध रहता है तो बहुत लाभ होता है। बहुत बड़ी खुराक उसमें मिलती है लेकिन विष्णु-सहस्रनाम से स्नान होता है। खुराक से पोषण मिलता है। ज्ञान ध्यान कर्म भक्ति, योग चित्त विकास विभूति विस्तार, आत्मानात्मविवेक आदि विविध खुराक गीता में मिलती है जिससे पुष्टि मिलती है। लेकिन विष्णु-सहस्रनाम से स्नान होता है, मन धुल जाता है तो वह एक विशेष ही अनुभूति है। इसके अलावा मुझे ऐसा भी अनुभव है कि नदी में खुला हुआ मैं जाता हूँ वहाँ नंगे आसमान की तरफ देखता हूँ, तो किसी तरह मेरे अन्तर्गत भाव खुल जाते हैं। यह नहीं कि इस तरह के स्नान से

लिए विष्णु-सहस्रनाम अनिवार्य है। अनिवार्य कुछ भी नहीं है सिवा इसके कि हमारा दिल खुला हो। जिसमें भगवद्भाव सद्भाव दिल में प्रविष्ट हो सके उसके लिए दिल खुला हो इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए। चित्त का दरवाजा खुला हो निर्व्याज और निरुपाधिक भाव हो तो वह अनुभूति कभी आ सकती है।

अनन्तनामी अनामी

विष्णु सहस्रनाम में भगवान् के हजार नाम बताये है। दरअसल भगवान् के नाम कौन बतायेगा ? उसके असंख्य गुण हैं और असंख्य नाम है। मनुष्य की वाणी से उसके गुण प्रकट हो यह असम्भव है। हम कितने छोटे पन्थ है! इसमें से जो परम ज्ञानी हैं, साक्षात्कारी है भगवद्-कृपा से जिनमें साक्षात्कार का प्रादुर्भाव हुआ है उनकी वाणी भी छोटी पड़ती है जहाँ भगवद् वर्णन का प्रसंग आता है। लेकिन साधकों की साधना के लिए ये सारे साधन बनाये गये है जिनमें विष्णु-सहस्रनाम भी एक है। कहीं-कहीं भगवान् के चौबीस नाम बताये गये है। कुरान शरीफ में भगवान् के ९९ नाम बताये गये है। पारसियों ने भी इस तरह भगवान् के नाम गिनाये है। रामदास स्वामी ने लिखा है चौबीस नामी सहस्र नामी अनन्तनामी तो अनामी। तो कसा आहे अन्तर्यामी विवेकें ओळखावा। भगवान् के चौबीस नाम कहे गये है सहस्रनाम कहे गये है। उसके तो अनन्त नाम है, फिर भी वह अनामी है। वह अन्तर्यामी भगवान् कैसा है यह विवेक से ही जाना जा सकता है। इस तरह उसको जानने का एक साधन बताया गया है।

एक अनोखा शब्द

आज मैं विष्णु-सहस्रनाम पढ़ रहा था तो एक शब्द की तरफ मेरा ध्यान खिंचा। इस तरह कभी-कभी कोई शब्द ध्यान खींचता है। व्याकरण के अनुसार भगवान् के नाम उसमें एक वचन में बताये गये है। जैसे दामोदर, केशव, माधव—लेकिन उसमें एक नाम बहुवचन में आया

है, जो विशेष ध्यान खींचता है। कुछ के कुछ नाम एकवचन में और एक ही नाम बहुवचन में। वह नाम है सन्त —इस पर मैं खूब सोचता रहा। मेरा संस्कृत का जितना ज्ञान है उसको लेकर मैं ढूँढता रहा। सन्त नाम का कोई अकारान्त शब्द होता तो उसका एकवचन वैसा बनता। सारे एकवचनों के प्रवाह में यह एक बहुवचनवाला शब्द कुछ अटपटा-सा लगता है। यह शब्द एकवचन बने तो ठीक होगा, यह सोच कर मैंने उसे एकवचन बनाने की काफी कोशिश की लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली।

पुरुष विशेष को भगवान नहीं मान सकते

सत्पुरुषों के समूह को भगवन्नाम के तौर पर ग्रहण किया है और यह बहुवचन का शब्द बनाया है। किसी एक सत्पुरुष को ही भगवान् माना जा सकता है। ऐसे पत्थर को भी माना जा सकता है। अश्वत्थ वृक्ष को भी माना गया है तो फिर सन्त एकवचन में क्यों नहीं कहा गया? इस पर सोचता रहा कि सत्पुरुषों में एक-एक भगवत्सत्ता प्रकट होती है, तो साकल्य का आरोप किसी एक पर करना कठिन होता है। मानव होने के नाते सत्पुरुष में भी कुछ-कुछ गुण और दोष गुणच्छाया के रूप में होते हैं। उनको दोष नहीं मानना चाहिए बल्कि गुण की छाया मानना चाहिए। फिर भी उस पर साकल्य का आरोप करना कठिन मालूम होता है। सृष्टि के अचेतन पदार्थों पर साकल्य का आरोप सहज रूप से हो सकता है लेकिन किसी पुरुष विशेष पर भगवद् आरोप किया जाय यह कुछ कठिन मालूम होता है। बहुत हुआ तो उस पर भगवद् अवतार का आरोप किया जा सकता है। उसमें भगवत् अंश है ऐसा कहा जा सकता है। भगवान् कृष्ण को हम पूर्णावतार मानते हैं। वह हम अपनी कृष्ण भक्ति के कारण कहते हैं लेकिन पूर्ण और अवतार इन दो शब्दों में ही विरोध है, इसलिए शंकराचार्य ने गीता भाष्य में कहा है कि भगवान् अपने एक अंश से कृष्णरूप में प्रकट हुए—बावजूद इसके कि

अमाना कौन रहा था कि कृष्ण पूर्णावतार हैं। शंकराचार्य ने वैसा लिखा। कृष्ण का पूर्णावतार माना गया यह भक्तों की भावना की भाषा है। लेकिन शंकराचार्य की भाषा में कहा गया है कि किसी एक पुरुष विशेष पर आत्यन्तिक परमात्मा का आरोप नहीं किया जा सकता यद्यपि उसमें गुण-भाव होते हैं। हम नामों को भूलकर रूप पर गुणों का आरोप करें यह मुश्किल होता है।

ध्यान के पुट से पोटेंसी बढ़ती है

हजारों वर्षों के बाद किसी पुरुष-विशेष का नाम भगवन्नाम बन जाता है। अनेक भावनाओं का पुट चढ़कर उन नामियों में पोटकर पोटेन्सी बढ़ायी जाती है, वैसे ही ध्यान से उनकी पोटेन्सी बढ़ती है। होमियोपैथी में थोड़ी-सी दवा लेते हैं और उस पर शक्कर के पुट चढ़ाये जाते हैं, उसको घोटा जाता है। यथा गुणवर्धनम् —जितना मर्दन किया जाय उतनी गुण-वृद्धि होती है। कहा जाता है कि यह दवा एक लाख पोटेन्सी की है, यानी उसमें पुट चढ़ाये गये हैं। इसी तरह भगवान् के नामों का ध्यान करके असंख्य ऋषियों ने अपने ध्यान के पुट किसी नाम पर चढ़ा कर उसकी पोटेन्सी बढ़ायी हो यह होता है। अगर मैं नया विष्णु-सहस्र नाम लिखूँ तो उसके नाम पर अभी ही ध्यान का पुट चढ़ेगा लेकिन पाँच हजार वर्षों से ऋषि-मुनियों के ध्यान के पुट जो आज के विष्णु-सहस्र नाम पर चढ़े हैं वैसे उन पर नहीं चढ़ेंगे। लेकिन मुमकिन है कि मैं नयी गीता लिखूँ तो पुरानी गीता के गुणों को लेकर उसमें और वृद्धि भी कर सकूँ। यह काम तो कोई असामान्य पुरुष ही करेगा फिर भी वह सम्भव है। परन्तु विष्णु-सहस्रनाम पर जो अनेकों के ध्यान के पुट चढ़ चुके हैं वे नये नामों पर कैसे आयेंगे? नये नामों में उनका आविर्भाव कैसे होगा? इसलिए होमियोपैथी का तत्त्व यहाँ लागू होता है। उसके हर नाम पर ध्यान के पुट चढ़े हुए हैं। किसी एक पुरुष विशेष के नाम पर ध्यान के पुट चढ़-चढ़कर उसके गुणों का विकास और भाव —

आखिर एक ही रहे, यह होना है और किसी एक अवतार पर पूर्णता का आरोप किया जाता है।

अंतर्यामी राम के साथ दाशरथी राम का स्मरण

कुछ लोग समझते हैं कि हम राम का नाम लेते हैं तो दशरथ के बेटे का नाम लेते हैं लेकिन जब लोगों ने मुझसे पूछा कि आप किसका नाम लेते हैं तो मैंने कहा कि हम उस राम का नाम लेते हैं जिसका नाम दशरथ ने अपने बेटे का रखा था। राम-नाम दशरथ से और उनके बेटे से पुराना था। इसलिए राम और कृष्ण ये नाम भगवन्नाम ही हैं। ये ही नाम कुछ पिताओं ने कुछ पुत्रों के रखे हैं। अब हम उनका स्मरण करते हैं तो जो पराक्रमी बेटे निकले उनका भी स्मरण भगवन्नाम के साथ-साथ हो जाता है। हम हिन्दुस्तान के लोग ऐसे समझे हैं कि अन्तर्यामी राम का स्मरण करते हुए दाशरथी राम का भी स्मरण कर लेते हैं। कभी-कभी ध्यान को पुष्ट करते-करते कोई एक पुरुष विशेष ईश्वर की स्थापना पा लेगा लेकिन सामान्यतया एक पुरुष पर साकल्य का आरोप करना असंभव है। इसलिए सन्ता यह बहुवचनान्त शब्द इस्तेमाल किया गया है।

सत्पुरुषों का समूह

सत्पुरुषों का समूह भगवत्समूह ही है। सत्पुरुषों की एक ही जमात है। फिर वे दुनिया के किसी भी कोने में पैदा हुए हों, उनका एक नाता है। उन सबका अल्लाह से ताल्लुक है। कुरानशरीफ में कहा है 'उम्मतुम वाहिद' तुम्हारी उम्मत वाहिद है। तुम सब सत्पुरुष, जो दुनिया में रसूल हो गये, सबकी एक ही जमात है। सत्पुरुषों के समूह को ध्यान में लेकर सन्त शब्द का बहुवचन में प्रयोग किया गया होगा जो भगवान् का नाम बन गया है।

इन्दौर से अपेक्षा

आप पूछ सकते हैं कि इन्दौर को 'सर्वोदय-नगर' बनाना है इसका

इसमें क्या हानि है? मैं कहना चाहता हूँ कि इन्दौर सत्पुरुषों का समूह बने। सन्त बनें जिनमें कुछ चार लाख लोग आ जायें। सारा इन्दौर इस तरह एक सत्पुरुषों का समूह बने यह असम्भव नहीं है। कुछ को लगता है कि इन बातों में यह कैसे होगा? बाबा अव्यावहारिक बातें करता है। लेकिन मैंने बिल्कुल व्यावहारिक बातें कही हैं। अगर मैं कहूँ कि मिनिस्टरी डिसॉल्व करो, तो वह अन्याय मालूम हो सकता है। जब मैं कहता हूँ कि सरकार टैक्स न ले, तब भी लोग कहते हैं कि बाबा की बात अनुभव में नहीं आती। इसने सम्पत्तिदान चलाया था वह रहा था, फिर भी यह ऐसी बातें करता है। यह भाषा और है लेकिन अब मैं जो सुझाव पेश कर रहा हूँ वह एक आसान काम है। मैंने कहा कि नगर की दीवारों पर जो खराब चित्र हैं उनको हटाया जाय। समस्त नागरिक और नगर निगम तय करें कि हमारी दीवारों पर गन्दे चित्र नहीं रहेंगे। वहाँ पर हम सत्पुरुषों के वचन लिखेंगे। हमारी दीवालों पर ऐसा कोई भी गन्दा चित्र नहीं रहेगा जो वासना में जागृत करेगा। इतनी चीज आप करते हैं तो मैं मानूँगा कि इन्दौर सर्वोदय-नगर बन रहा है। इतना आसान-सा सवाल मैंने आपके सामने रखा है। कहा जाता है कि जिसने एक दफा भी हरि नाम का उच्चारण किया वह मोक्ष की तरफ गमन करने के लिए बद्ध परिकर हुआ। वैसे ही इन्दौरवाले अगर इतना आसान सा कार्यक्रम करते हैं जिसके लिए ज्यादा त्याग नहीं करना पड़ता तो मैं मानूँगा कि इन्दौर में सर्वोदय-नगर बनने की और सत्पुरुषों का जमात बनने की कोशिश हो रही है। इस प्रसंग से मैंने विष्णु-सहस्रनाम में से एक नाम का विश्लेषण आज आपके समक्ष किया।

इन्दौर —प्रार्थना प्रवचन

१६-८-६०

: १६

चित्त-निर्माण और विश्व-समस्याएँ

पद-यात्रा में दृष्टि चित्त निर्माण

भारत की यात्रा एक बार पूरी करनी चाहिए, यह विचार मेरे मन में आता है। लेकिन दूर के प्रान्तों का सवाल पेश हुआ। वहाँ पर अगर हम शारीरिक उपस्थिति की आवश्यकता मानते हैं, तो उस हिसाब से पद-यात्रा गलत साबित होगी। पदल-यात्रा के अपने कुछ लाभ गुण हैं और हर साधन की मर्यादा तो होती ही है वैसी उसकी भी मर्यादा है। पैदल-यात्रा के साथ एक विचार है, जिसके कारण धर्मप्रवण पन्थवर्गी ह आदि ने साधनाओं के तौर पर महान् पुरुषों ने माना है। इस विचार को हमें समझना चाहिए। उसी दृष्टि से मैंने इस पर चिन्तन किया। पुराने जमाने में शंकर और रामानुज घूमते थे। उस समय रेलवे जैसे साधन नहीं थे, फिर भी पैदल-यात्रा से कुछ कम साधन ऊँट घोड़े आदि थे लेकिन उन्होंने उनका उपयोग उचित नहीं माना। उसमें एक दृष्टि थी। वह दृष्टि चित्त निर्माण की थी।

हम ग्राम निर्माण आदि की बातें बोलते हैं लेकिन आज मानव के सामने असली समस्या चित्त निर्माण की है। आसाम में आज जो प्रसंग उपस्थित है वह दूसरी जगह भी उपस्थित हो सकता है। सब तरफ चित्त तो वही है। भिन्न-भिन्न आर्थिक, सामाजिक समस्याओं के मूल में आगे की आवश्यकता प्रतीत होनेवाला है। एक निमित्तमात्र बाह्य कारण हाथ में लेकर हम उसके जरिये चित्त निर्माण की तरफ सोचें, तो उसमें से दुनिया की समस्याओं को हल करने का उपाय मिल जायगा।

चित्त निर्माण का साधन : प्रवृत्ति और निवृत्ति

विचारकों के सामने हमेशा एक विचार रहा है कि कोई भी बाह्य समस्या का स्पर्श न करते हुए केवल चित्त-निर्माण की तरफ ध्यान दिया जाना ठीक होगा या कोई बाह्य समस्या जो कि उस उस जमाने में उपस्थित है उसे वाहन बनाकर चित्त निर्माण का कार्य करना ठीक होगा? इस प्रकार के विचार चलते थे। सभी विचारों में निवृत्ति भी मान्य है और प्रवृत्ति भी। आन्तरिक रूप से निवृत्ति और बाह्य रूप से प्रवृत्ति। जिनमें निवृत्ति मान्य नहीं है, वे विचार धीरे धीरे प्रवृत्ति में से व्यवस्था और हिंसा की तरफ जाते हैं। जहाँ प्रवृत्ति ही मान्य नहीं है वहाँ निवृत्ति में से विचार एकान्त में जाते हैं और अन्तरंग में गुफा में प्रवेश करते हैं। अगर उसकी जरूरत हो तो वहाँ भी जाना पड़ता है और जरूरत हो, तो हिंसा की तरफ भी जाना पड़ता है। हमने एक मर्यादा मान ली है कि व्यवस्था में जाना पड़े तो भी सत्ता में जाना न पड़े। और सत्ता भी हाथ में लेना पड़े तो हिंसा की तरफ न जाय। ऐसा मानसिक निश्चय हमने किया है।

प्रवृत्ति चित्त निर्माण के लिए ही

लोक-कल्याण चाहनेवाले सब लोगों ने ऐसा निश्चय नहीं किया है। वे कहते हैं कि हिंसा और अहिंसा बाह्य चीज है। लोक-कल्याण के लिए कभी-कभी स्थूल हिंसा करनी पड़ती है। इस तरह का विचार माननेवाले लोक-कल्याणकारी आज भी हैं बावजूद इसके कि हिंसा के शस्त्र साधन सब आउट आफ डेट—गये-बीते हो चुके हैं। लेकिन उन्होंने बाह्य-निश्चय नहीं किया। हमने एक बाह्य निश्चय कर लिया है। इसलिए हमारे सामने हिंसा का रास्ता बन्द है। हम नहीं चाहते कि प्रवृत्ति को माना जाय और निवृत्ति को न माना जाय। केवल निवृत्ति को माननेवाला रास्ता हमारे लिए बिलकुल बन्द नहीं है। बल्कि व्यक्तिगत जीवन में जो खोज होती है वह तो गुफा में की जाती है। इस तरह प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का योग हो ऐसी एक प्रक्रिया हमने उठाया है। बाह्य

प्रवृत्ति को उठाते हुए चित्त निर्माण की कोशिश होनी चाहिए। बाह्य प्रवर्तन चित्त निर्माण का साधन बनना चाहिए। इस तरफ मैं आप सबका ध्यान खींचना चाहता हूँ।

आलम्बन शून्यता का आकर्षण

महावीर ने सामूहिक काम हाथ में नहीं लिया बल्कि उनको जो मध्यस्थ चिन्तन की प्रेरणा हुई, उसे समाज के सामने रखते हुए वे घूमते चले गये। कोई खास काम उठाने हाथ में नहीं लिया। बुद्ध भगवान ने एक काम हाथ में लिया। यज्ञीय हिंसा रोकने का काम उनके लिए निमित्तमात्र था और उसके जरिये वे चित्त निर्माण का काम करते रहे। चित्त निर्माण के लिए समाज की किसी समस्या को उठाना उन्होंने जरूरी माना। इस तरह दो विचारधाराएं चलती आयी हैं। मेरी अपनी व्यक्तिगत अन्तःस्फूर्ति होती है जो मुझे बाह्य आलम्बनशून्य चित्त निर्माण काम की तरफ जोरों से खींचती है। बचपन में कुछ कम खींचता था, लेकिन अब वह खिंचाव बढ़ा है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद तो उस तरफ का खिंचाव और भी बढ़ा है। मैं चाहता हूँ कि आलम्बनशून्य बनूँ, बाह्य प्रवृत्ति का खयाल न रखते हुए स्व चित्त निर्माण और समूह चित्त निर्माण का काम करूँ। लेकिन एक प्रवाह होता है। गांधीजी के साथ मेरा जो सम्बन्ध रहा, उसको टालना मेरे लिए असंभव है और अयोग्य भी है। मैं नहीं मानता कि उसे टालने से मेरे विकास में वृद्धि होगी। इसलिए [illegible] होकर मैंने काम शुरू किया, तो मुझे भूदान का काम मिला और अब यह डाकुओं का काम मिला। लेकिन मैंने कोई स्वतन्त्र प्रवृत्ति नहीं उठायी। यह सहज ही आयी।

सहज प्रवृत्ति : भूदान, पदयात्रा आदि

अब सारे भारत ने भूदान की प्रवृत्ति मान्य कर ली है। [illegible] [illegible] प्रवृत्ति का आधार मैंने चित्त निर्माण के खयाल से लिया, लेकिन बापू के साथ मेरा सन् १९१६ से लेकर १९४८ तक ३२ साल

[illegible] हुआ, [illegible] हुआ, उसके [illegible] में [illegible] मुझमें [illegible]। अब यह [illegible] पड़ गया है कि [illegible] है [illegible] [illegible] है [illegible] नहीं [illegible] उसका [illegible] नहीं है। [illegible] है। [illegible] बन गया है। [illegible] [illegible] [illegible] गया।

[illegible] नहीं [illegible] [illegible] है। [illegible] कुछ [illegible] करना है जो [illegible] मुझे [illegible] [illegible] [illegible] जो [illegible] है उनमें [illegible] होगा, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] चाहिए। [illegible] [illegible] [illegible] हमारे [illegible] हुई।

सत्यनिष्ठ जीवन और [illegible]

[illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] उपस्थित होता है। लेकिन [illegible] [illegible] कुछ [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] है और [illegible] है, तो [illegible] विचार [illegible] नहीं होता है? जो [illegible] विचार में नहीं होता [illegible] उसका [illegible] करना चाहिए? हम विचार में [illegible] मनुष्य हैं, तो हमारे [illegible] नहीं होगा। लेकिन [illegible] मनुष्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उसका [illegible] नहीं होगा। यह हमारे [illegible] में [illegible] है, [illegible] न होता तो [illegible] [illegible] की [illegible] है [illegible] न होता तो। पर जो [illegible] जीवन [illegible] [illegible] जीवन और उसका [illegible] होगा? [illegible] [illegible] है—[illegible] करती है [illegible] है तो [illegible] है।

भान—भयावह प्रश्न में प्रवेश करता हूँ। अगर उपवास भगवद्भक्ति के तौर पर आता है भगवान् के साथ रहने में—सारा २४ घंटा उनके साथ रहने में—अगर खाने से बाधा आती हो तो उपवास करना ठीक है। तब उपवास हो सकता है। अन्यथा उपवास ठीक नहीं है। बल्कि मैं तो मानता हूँ कि जैसे हम चरखे का तेल देते हैं, वैसे ही आहार लेते हैं, तो उसे क्यों नाहक जाय? यह मेरा समझ में नहीं आता। बच-पन में हम एकादशी रामनवमी आदि पर उपवास करते थे। चित्त में राम और कृष्ण की भक्ति आज भी पूरी भरी है, लेकिन आज यह प्रेरणा नहीं होती है कि रामनवमी के दिन खाना छोड़ूं या खाने में परिवर्तन करूं। क्योंकि खाना तो औषध-तुल्य समझकर खाना चाहिए।

चित्त निर्माण की समस्या

इस तरह उपवास का विचार कभी-कभी मन में आता है और क्षीणता के कारण आता है। अगर मैं इस समय यह विचार मान्य करता तो उसमें शायद ऐसा दीखता कि बाबा असम के लिए कुछ कर रहा है। लेकिन मैं उस विचार को छोड़ता हूँ और अपनी पदयात्रा जारी रखता हूँ और फिर भी सोचता हूँ कि असम को कैसे मदद पहुँचे, तो यह चित्त निर्माण का सवाल हो जाता है। असम में बंगालियों का रहन देनी है, वे लोग कष्ट में पड़े हैं। सन् १९४९ में मैंने यह काम किया है। लेकिन उस समय भी प्रधान बात चित्त निर्माण की ही थी। शान्ति-निधि ने अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए हमसे कहा कि एक-एक स्थान पर एक-एक व्यक्ति को रखा जाता है। इस पर मैंने पूछा कि चार पाँच को साथ क्यों नहीं रखते हैं? तो उन्होंने कहा कि उसमें एक-दूसरे की बनती नहीं है। ये सब बातें चित्त निर्माण की समस्या पेश करती हैं।

क्षोभ के कारण उन्मत्तता

दूसरा विचार यह आता है कि हम कब तक इन छोटे-छोटे मसलों में पड़ें? जहाँ भी मानसिक क्षोभ होता है वहाँ बुराई आती ही है। भर

पास एक पत्र आया कि असम में क्रिया पर अत्याचार हुआ। मैं नहीं जानता कि यह वर्णन कहाँ तक सही है। अगर सही हो तो मेरी समझ में नहीं आता कि भाषा के मसले पर झगड़े और मारकाट हो भी सकती है लेकिन स्त्रियों का सम्बन्ध वहाँ से आता है? मैं असमियों को दोष नहीं देना चाहता, क्योंकि वहाँ की स्थिति को मैं जानता नहीं हूँ। लेकिन हमें सोचना चाहिए कि ये सब बातें क्या होती हैं। लोभ के कारण चित्त बेकाबू दौड़ता है। किसी भी कारण उसे दौड़ने का मौका मिला तो जो राहें बनी हुई हैं उन पर वह दौड़ता है चाहे भाषिक मसला हो, राज्य का हो या और कोई हो। मानसिक क्षोभ प्रकाशन के जो जरिये हैं वे सब प्रकट होते हैं। उसमें मानव का हीनत्व प्रवेश करता है। बाकी वहाँ पर कोई उस भ्रम को स्वतन्त्र रूप से हटाने की कोशिश करेगा जो उसका जरूरत नहीं है। क्योंकि लोग स्वयं मानते हैं कि यह काम गलत है, फिर भी क्षोभ के प्रसंग में यह सब होता है।

पल में प्रलय

अभी जयप्रकाशजी ने बिहार के काम का जिक्र करते हुए कहा कि वहाँ पर अच्छा काम चल रहा है। पहले से ज्यादा काम होता है परन्तु उसमें वह ताकत नहीं बनती थी। अच्छे ग्राम बन रहे हैं लेकिन एकाध ग्रामदान का असर क्षेत्र पर नहीं होता है। अब सवाल यह है कि आपको समय कितना मिलनेवाला है? सामान्य समय में भले ही अवकाश मिले लेकिन आज का परिस्थिति इतनी उलझी हुई है कि कोई नहीं कह सकता कि किस वक्त क्या होगा। अभी पण्डितजी विदेश गये थे। एक देश के मुख्य व्यक्ति से बात करके लौटे। लौटते दिन बाद ही उसकी सरकार वहाँ नहीं रही। शिखर-सम्मेलन का क्या हुआ, हम सब देख ही रहे हैं। ऐसा सब चल रहा है। तो आप शान्तिपूर्वक नव-निर्माण का काम करते चले जायँ यह कैसे बनेगा? ब्रह्मदेव की तरफ से आश्वासन मिला था कि जब तक तेरा काम पूरा नहीं होगा तब तक मैं

नहीं आऊँगा। लेकिन यहाँ बीच-बीच में सवाल खड़े होते हैं उस हालत में हमें क्या करना चाहिए?

निर्माणों का मूल

दुनिया की हालत का हम पर असर होता ही है। इस के सवाल से हम निर्माण-कार्य करें तो काम में कई चीजें दाखिल होती हैं और हमारा निर्माण खतम होता है। मैं यह सब इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि निर्माण-कार्य नहीं करना चाहिए बल्कि इसलिए कह रहा हूँ कि हमारा अपना चित्त निर्माण होना चाहिए। सन् १९४८ में मैंने मेव भाइयों की कुछ सेवा की। लेकिन ढाई साल कोशिश करने पर भी परिणाम कुछ भी नहीं निकला। इतने में भूमिहीनों की तरफ से माँग पेश हुई और इस काम की तरफ मन खिंच गया। जहाँ बाह्य निर्माण की बात करते हैं वहाँ अपवाद होता ही। इसलिए चित्त-निर्माण के सवाल से हम कोई चीज हाथ में लेते हैं तो वह काम बने या न बने, तो भी चित्त निर्माण होता ही है।

सरकार निरपेक्ष कार्य का प्रयोग

क्या हम किसी एक क्षेत्र में ऐसी हवा पैदा कर सकते हैं कि जहाँ सरकार की जरूरत महसूस न हो? मैं बिलकुल अन्तिम पक्ष नहीं है लेकिन उसीको हाथ में लेकर काम किया जाय—बावजूद इसके कि सरकार अच्छी हो तो भी उससे गलत काम होते हैं। अगर हम ऐसा क्षेत्र निर्माण कर सकते हैं कि जहाँ सरकार की जरूरत न हो, तो कुल दुनिया को आवाहन कर सकते हैं। आज सारी दुनिया की आकांक्षा है कि ऐसे कुछ प्रयोग करें। दुनिया इन सरकारों से त्रस्त है। अच्छी-से-अच्छी सरकार से भी दुनिया तंग आ गयी है। अभी इंग्लैंड में चुनाव हुए थे। कोई पार्टी यह नहीं कह सकती थी कि हम अच्छी हालत लायेंगे। क्योंकि सुख तो वहाँ पर है ही। लेकिन वहाँ ऐसी कोई पार्टी खड़ी होती जो कहती कि इंग्लैंड का आज का जो सुख है उसका आधा

हम रखेंगे और सारी दुनिया को बाँटेंगे तो वह आज बेवकूफ कहा जाना, लेकिन कल वही धार्मिक गिना। अगर चुनाव में इस तरह का काम हो, तो उसमें कुछ जायका आयेगा। सार यह कि दुनिया के सारे देशों में चाह है कि सरकार की कोई जरूरत न रहे। क्या यह सम्भव है? क्या यह स्वप्नवत् ही है? हिन्दुस्तान में कहीं पर इसका प्रयोग करें और उसके स्थूल चिह्न के तौर पर अदालत और पुलिस की जरूरत न पड़े या कहकर समाज को बना सकें तो वह करने जैसा काम है। अगर कहीं ऐसा क्षेत्र बनाया जा सकता है, तो मैं भी उसकी तरफ ध्यान देना चाहता हूँ।

आज की प्रथम आवश्यकता

चित्त निर्माण और शासन निरसन शोषण-मुक्त समाज की स्थापना यही वो उद्देश्य लेकर हमें काम करना चाहिए। मेरा मन तो यहाँ तक जाता है कि समाज भले ही शोषण-मुक्त न हो पर शासन-मुक्त तो बनना ही चाहिए। शोषण तो हम सब करते हैं। सारा समाज भंगी का शोषण करता है और भंगी अपनी पत्नी का शोषण करता है। इसलिए बिलकुल "शोषण-मुक्ति शायद" सम्भव न हो, वह भले चले लेकिन शासन-मुक्ति के प्रयोग हमें करने चाहिए। वैसे इस तरह की भाषा में एकांगीपन आता ही है, समत्व नहीं रहता है। यह एकांगीपन चित्त की बात प्रकट करने के लिए साहित्यिक इस्तेमाल करते हैं। जैसे गांधीजी ने कहा था कि सत्य के लिए मैं स्वराज्य छोड़ सकता हूँ। विशेष वस्तु के लिए आदर बताने का उसको आदरपूर्वक कहने का यह एक प्रकार है।

इन्दौर —प्रबन्ध समिति की बैठक में
१७-८-'६०

: १७ :

उद्योग : सर्वश्रेष्ठ योग

[प्रारम्भ में योगाश्रम के साधकों ने सामूहिक आसन बताए। उसके बाद विनोबाजी का प्रवचन हुआ।]

शरीर-स्वास्थ्य योग का प्राथमिक अंग

आपके सामूहिक आसनों का कार्यक्रम देखकर बहुत आनन्द हुआ। बचपन में मैं जब बड़ौदा में था, इस प्रकार के आसन देखा करता था। सन् १९०५ से लेकर १९१ तक, लगभग ग्यारह साल मेरे बड़ौदा में बीते। वहाँ एक अच्छी व्यायामशाला थी, जिसके प्रोफेसर माणिकराव भारत में मशहूर हो गये हैं। उनके आसनादि हम देखते थे। और भी व्यायामशालाएँ वहाँ चलती थीं। प्रोफेसर माणिकराव के शिष्य गुणे थे, जिनका नाम अब कुवलयानन्द हो गया है। वे उस समय वहाँ पर थे। उम्र में मुझसे बड़े थे, लेकिन उनसे मेरा परिचय था। वे इस प्रकार सारे आसन करते थे और बताते थे। हम देखते थे, फिर हमने भी कुछ करना शुरू कर दिया। योग-सोपान-पूर्व चतुष्क नाम की एक किताब उस समय हमें मिली। उसमें चित्र भी थे और विधि भी थी। उसको देख-देखकर हम भी कुछ किया करते थे। आज आपने यहाँ पर जितने आसन बताये, वे सब हमने किये हैं। जो आपने नहीं दिखाये, वे भी किये हैं। सिर्फ एक आसन हमसे नहीं बना। हमारे हाथ में कुछ कमजोरी थी, इसलिए मयूरासन हम नहीं कर पाये। क्योंकि उसमें हाथों पर सारा भार आता है।

समाधि योग बूझत बूझत बूझे

आसन तो शरीर-स्वास्थ्य के लिए एक साधन है, जो योग का बहुत प्राथमिक अंग है। योग का मुख्य अंग धारणा, ध्यान, समाधि है। समाधि

जितना ज्यादा लगे उतना अच्छा । ऐसा बचपन में हमें लगता था और हम मानते थे कि समाधि लग जायेगी ।

शास्त्रों में कहा है कि धीरे-धीरे उत्तम प्राप्त करना है और उस तरह आगे बढ़ना चाहिए । मानव मात्र को एक मुनासिब एकदम मुकाम पर पहुँचा देनेवाला है । योग का मार्ग सिलसिला का मार्ग है । लेकिन बचपन में हम समझते थे कि जल्दी समाधि लगे । जल-प्रपात उसका साधन था । गर्मी की छुट्टियों में हम सब के साथ निकल कर बैठते थे । बिलकुल पतला-सा धार बहती रहती थी । ऊपर से बूँद-बूँद पानी टपकता रहता था और हम मान लेते थे कि अब हमारी समाधि लग गयी है । ऐसा भास होता था कि समाधि लग गयी और चित्त का समाधान हो जाता था । समाधि में पहले तब बैठ जाता है । हम भी बैठ जाते हैं । हम नहीं जानते कि उस प्रकार समाधि का साधन बहुतों ने किया होगा । लेकिन बाद में मैंने सुना कि आधुनिक डॉक्टरों का कहना है कि इस तरह सिर पर बूँद-बूँद धारा टपकती रहे, यह अच्छा है । हम तो पानी की उस धारा को भगवान् का शुभ समझते थे । उससे ठण्डक आ पहुँचती थी और मानते थे कि समाधि लग गयी । हम यह नहीं कह सकते हैं कि वास्तव में समाधि लगी । लेकिन समाधि का आभास होना भी बड़ी बात है । मुझे बतलाइये, यह देना भी बड़ी बात है । तुलसीदासजी ने कहा है कि 'सूझत-सूझत सूझ' एकदम समझ में नहीं आता है, धीरे-धीरे समझ में आती है । लेकिन समाधि का आभास हो जाय और चित्त में ऐसा मालूम हो कि हम शान्त हैं, मन हो प्रसन्न न हो, परन्तु अगर आभास हो तो दुनिया में कोई ताकत नहीं है जो इन्सान की सीधी राह न रोक सके ।

आत्मीयता सर्वश्रेष्ठ योग

सन् १९१६ में हम घर छोड़कर ब्रह्म की खोज में निकल पड़े—अथातो ब्रह्मजिज्ञासा । अब जिज्ञासा पूर्ण हुई है और सामूहिक ब्रह्म जिज्ञासा की धारणा से हम काम कर रहे हैं । सामान्य जनता का जीवन-स्तर ऊँचा उठे, गरीब और दुःखियों के दुःख में हम हिस्सा लें, सुख बाँटने गुण

का हिस्सा दूसरों को दें—इस उद्देश्य से बहुत बड़ा योग, जिसे सहयोग कहते हैं, करना होगा। यह सबसे ऊंचा योग है। एक-दूसरे के सुख-दुःख का बोझ लेना ऊंचा योग है। गीता ने उसे आत्मौपम्यता नाम दिया है और कहा है स योगी परमो मत'। ध्यान-योग की प्रक्रिया का वर्णन करते अन्त में जो दर्शन रहा है उसमें यह बात कही है। फिर पांचवें अध्याय में कुछ प्राणायाम की प्रक्रिया बताया है। लेकिन ध्यान की कुल प्रक्रिया छठे अध्याय में ही बतायी गया है जिसमें पहुँचे हुए योगी का वर्णन किया गया है और आखिर में कहा है कि वह सर्वश्रेष्ठ योगी है, जो आत्मौपम्य से बरतता है अपनी उपमा से सबका सुख-दुःख देखता है, जैसा मुझे सुख दुःख है, वैसा ही दूसरा को भी है इसलिए दूसरा का खयाल रखकर जो बरतता है वह योगी सर्वश्रेष्ठ है ऐसा भावार्थ ने कहा है। शंकराचार्य इस पर भाष्य लिखते हुए कहते हैं अहिंसक इत्यर्थ'—शंकराचार्य ने भाष्य में परिभाषा बतायी कि जो अहिंसक है वह परम योगी है सब योगियों का शिरोमणि है। यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि योगाभ्यास की प्रक्रिया के अन्त में भगवान् ने यह बात कही है।

पारस्परिक ओतप्रोतता का अनुभव योग है

हमने बंगाल में विष्णुपुर में उस तालाब के किनारे जहाँ रामकृष्ण परमहंस को प्रथम समाधि लगी थी कहा था कि जिस समाधि का अनुभव श्री रामकृष्ण देव ने किया उस समाधि का सारे समाज का अनुभव हो सामाजिक समाधि का हम अनुभव हो यह हम चाहते हैं। यही हमारा लक्ष्य है और इसे सामने रखकर भूदान का बहाना लेकर हम घूमते हैं। हम कहते हैं कि सारे समाज का एक चित्त बने। सब लोग साथ रहें, जिसे लोग संगठन कहते हैं, उस खयाल से हम नहीं बोल रहे हैं लेकिन हम चाहते हैं कि सबको यह एहसास हो कि चाहे हमारे शरीर अलग अलग हों, फिर भी हम एक ही शरीर में नहीं रहते हैं, सारे शरीरों में हम ही रहते हैं हमें एक स्थूल शरीर मिला हुआ है लेकिन बाकी के

शरीर भी हमारे ही हैं, जैसे किसी अमीर का दो सौ कोठरीवाला मकान हो तो उसमें एक-एक कोठरी में एक-एक मनुष्य रहता है लेकिन हर एक कहता है कि पूरा मकान हमारा है। हर शख्स पर पूरे मकान की जिम्मेवारी रहती है क्योंकि सब मिलाकर एक परिवार है। सहूलियत के लिए हरएक को एक-एक कोठरी दी गयी है लेकिन वह एक ही कोठरी उसका नहीं है सब मकान उसका है। किसी कोठरी में गंदगी हो या कोई बीमार हो तो वह सबकी जिम्मेवारी मानी जाती है। उसी तरह हमें रहने के लिए अलग-अलग कोठरियाँ मिली हुई हैं जिसे शरीर कहा जाता है लेकिन सब मिलकर एक ऊँचा मकान बनता है — मानो मकान तरह — जिसमें हम रहते हैं और जिसकी जिम्मेवारी हम सबकी है। आपमें हम और हममें आप ओत-प्रोत हैं। ताने में बाना और बाने में ताना जैसा रहता है वैसे ही हम सब हैं। इसका साक्षात् अनुभव हो इसका नाम है योग।

कर्म एक शक्ति है, ध्यान दूसरी शक्ति

पतंजलि ने योग विवरण में समाधि को आखिरी नहीं कहा है। समाधि के कारण चित्त शुद्धि होती है और उसके बाद विवेक-ख्याति होती है। यानि साक्षात् प्रज्ञा प्राप्त होती है। पतंजलि का सूत्र है 'श्रद्धावीर्य समाधिप्रज्ञापूर्वक योग' — पहले श्रद्धा फिर वीर्य फिर स्मृति और फिर समाधि जिसका जिक्र अष्टांगयोग में किया जाता है और उसके बाद प्रज्ञा। इस तरह का क्रम बताया गया है। स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में गीता में यही कहा है समाधि के बाद जब प्रज्ञालाभ होता है और वह स्थिर बनता है तब मनुष्य स्थितप्रज्ञ बनता है। उसका भावार्थ यह है कि समाधि ध्यान साधना की अन्तिम अवस्था नहीं। ध्यान एक शक्ति है जैसे कर्म एक शक्ति है। कर्म का उपयोग गलत हो सकता है और सही भी। वैसे ही ध्यान भी गलत काम के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है और सही काम के लिए भी। लेकिन कर्म जो भगवत् अर्पण हो तब वह पावन परमार्थसाधक बन जाता है। वैसे ही ध्यान भी भगवत् अर्पण हो

और सत् कार्य के लिए चले तो पारमार्थिक साधना बनता है नहीं तो वह केवल एक नतिमात्र है।

ध्यान और कर्म की प्रक्रियाएँ साधने से प्रज्ञा की प्राप्ति

ध्यान और कर्म परस्परपूरक शक्तियाँ हैं। कर्म के लिए दस-बीस क्रियाएँ करनी होती हैं यानी उन सबका ध्यान करना पड़ता है। अनेक चीजें एकदम सधे बिना कर्म नहीं हो सकता। कर्म के लिए अनेक वस्तुओं का सावधानी से एक साथ ख्याल करना पड़ता है। उसमें एक शक्ति विकसित होती है। उससे भिन्न शक्ति ध्यान से विकसित होती है। ध्यान में कुल वस्तुओं को छोड़कर एक ही चीज का ध्यान किया जाता है। पचास चीजों का ध्यान किया जाय तो कर्म शक्ति विकसित होती है और एक ही बात पर एकाग्र होने से ध्यान शक्ति विकसित होती है। कर्म के लिए अनेक वस्तुओं का ख्याल करना पड़ता है, वैसे ध्यान के लिए एक ही वस्तु का करना पड़ता है। दोनों पूरक शक्तियाँ हैं, घड़ी में अनेक पुरजे होते हैं। उनको अलग-अलग कर दिया जाय, तो आपकी कर्म-शक्ति सध गयी। उसके बाद घड़ी के सारे पुर्जों को इकट्ठा करके फिर से घड़ी बनायी जाय, तो ध्यान शक्ति सध गयी। पुर्जों को अलग-अलग करने का काम तो बच्चे भी कर सकते लेकिन एकत्र करना कठिन है। पुर्जों का अलग करना और एक करना इस तरह की दोहरी प्रक्रिया जब सधती है तब प्रज्ञा बनती है। इन दो प्रक्रियाओं में से एक कर्म की और दूसरी ध्यान की प्रक्रिया है। जब दोनों प्रक्रियाएँ सधती हैं, तब प्रज्ञा बनती है जो निर्णयकारिणी होती है।

उद्योग

आपने अभी योगासन किये, वह एक सुन्दर व्यायाम है। इसकी खूबी यह है कि इसके लिए न ज्यादा जगह की जरूरत है न औजारों की। इसमें थकान नहीं है, एक्साइटमेंट—उत्तेजना नहीं है जैसे दूसरे व्यायामों में होती है बल्कि इसमें शांति है इसलिए इस व्यायाम से आरोग्य के साथ

होगा। इससे आपके लिए सुन्दर वातावरण निर्माण होगा। अच्छे वातावरण में ही योग चलता है। रात को सिनेमा देखा जाय, सुबह देर से उठा जाय, उठने पर गंदे चित्र याद आ जाय, तो वातावरण खराब हो जाता है। इसलिए आपको सर्वोदय प्रचारक बनना होगा। सबके सहयोग से ही आपका यह शहर इन्दौर सर्वोदय-नगर बनेगा। सहयोग एक श्रेष्ठ योग है।

इन्दौर
१७ ८ '६० —योगाश्रम म

१८ :

चौरहा

शस्त्र शक्ति और शब्द शक्ति

दुनिया में जो शक्तियाँ काम करती हैं उनमें लोकमान्य शक्तियाँ दो हैं : एक है शस्त्र-शक्ति और दूसरी है शब्द-शक्ति। किसी श्रेष्ठ पुरुष की वाणी [illegible] श्रद्धा का, समाज का या दुनिया को शब्द मिलता है और वह सबकी श्रद्धा अपनी तरफ खींच लेता है। मानो सब श्रद्धाएँ उस शब्द में एकत्र हो जाती हैं और शब्द शक्तिशाली बन जाता है। अन्यथा कई शब्द यथार्थ होते हुए भी सही या ठीक होते हुए भी दुनिया में बिखर जाते हैं, उन शब्दों से शक्ति का प्रवाह नहीं बहता।

शब्द शक्ति

शब्द सूझता है किसी ऋषि को, किसी चिन्तनशील अनुभवी पुरुष को या किसी प्रयोगशील योगी को। लेकिन ऐसा हर शब्द सबकी भावनाओं को आकृष्ट कर सके ऐसी शक्ति उसमें हो ऐसा नहीं होता, बावजूद इसके कि वह ऋषि वाणी हो, वह सत्य दर्शन हो या उससे दुनिया का भला हो सके, ऐसा सम्भव हो। यह जो अनेकों की श्रद्धा एकत्र होती है उसको मैं ईश्वरकृति मानता हूँ। किसी ग्रन्थ के या किसी ऋषि के शब्द के साथ ईश्वर अपनी शक्ति जोड़ देता है तब वह सबकी श्रद्धाओं को आकृष्ट कर सकता है। ऐसा भी नहीं है कि किसी एक व्यक्ति के शब्द में ईश्वर उस व्यक्ति को जिन्दगीभर अपनी प्रेरणा भरता रहे। जिनको हमने अवतार माना है उन लोगों के साथ भी ईश्वर की प्रेरणा जिन्दगीभर रही, ऐसा नहीं है।

रामचन्द्रजी के बारे में मैंने अपने मन में एक बात मान ली है। मालूम

नहा कि उसमें मैं ठीक-ठीक बुद्धि का प्रयोग कर रहा हूँ या नहीं। लेकिन मैंने मान लिया है कि जहाँ रावण-मुक्ति हुई, वहीं राम का अवतार समाप्त हुआ। उसके बाद राम एक अच्छा राजा रहा। इसलिए शायद अपने रामायण में तुलसीदासजी ने उत्तरकाण्डवाला भाग लिखा नहीं। यानी सीता का परित्याग पूर्वक नाम के पुत्र का वध लक्ष्मण का परित्याग और भगवान् का स्वर्गारोहण—यह सब नहीं लिखा। इतना ही लिखा कि रामचन्द्रजी अपने भाइयों और हनुमान् को लेकर एक उद्यान में बैठे हैं। यहाँ पर तुलसीदासजी ने चरित्र को समाप्त किया है। यानी उन्होंने ऐसा भास कराया है कि रामचन्द्रजी किसी उद्यान में हमारे साथ विराजमान हैं। सारांश यह कि रावण-मुक्ति के बाद रामचन्द्रजी का जीवन एक मानव का था एक उत्तम मानव का था।

सत् और असत्, प्रकाश और अन्धकार

ईश्वर-संकल्प के अलावा एक और भी संकल्प है। वैसे व्यापक अर्थ में देखें तो हम सब अवतार ही हैं। कोई काम का अवतार है तो कोई क्रोध का अवतार है कोई मोह का अवतार है। उसके अन्दर में सत् और असत् दोनों समाते हैं। प्रकाश और अन्धकार दोनों उसके पेट में समाते हैं। लेकिन कभी-कभी किसी एक विशेष सत्पुरुष में परमेश्वर का एक विशेष संकल्प जुड़ा होता है। ईश्वर ने संकल्प किया कि सृष्टि पैदा हो तो सृष्टि पैदा हुई। उसने संकल्प किया कि विविध जातियाँ पैदा हों और फलें तो जातियाँ चल रही हैं। इस प्रकार विश्व में उसका भी संकल्प है। लेकिन जब किसी विशेष पुरुष के चिन्तन के साथ ईश्वर की प्रेरणा जुड़ जाती है और जब तक वह जुड़ी रहती है तब तक दुनिया उससे प्रेरणा पाती है।

जब ईश्वर कोई संकल्प करता है

रामजी के बारे में जैसा मैंने कहा वैसा निरूपण सबका हम नहीं कर सकते। हम कोई परीक्षक नहीं हैं। यह तो सहज एक विचार मेरे मन में आया सो मैंने कहा। सार यह कि ईश्वर जब कोई विशेष काम करना चाहता है तब वह अपना संकल्प किसी विशेष पुरुष के साथ जोड़ देता है

और तब वह साथ होता भी है। लेकिन जब तक वह अपना सकल्प नहीं जोड़ता तब तक गुण आता है और लाभ उसे सुनते हैं। दुनिया में अनेक प्रेरणाएं चल रही हैं। उनमें से वह भी एक प्रेरणा होती है और उसी प्रकार चलता है। लेकिन जब ईश्वर कोई सकल्प करता है तो ये चलनेवाली विविध प्रेरणाएं खतम हो जाती हैं और सबकी श्रद्धा और शक्ति एक में एकत्र हो जाती है।

विविध प्रेरणाओं को खतम करनेवाला

विष्णु-सहस्रनाम में एक नाम आता है वीरहा। वीरहा का अर्थ होता है वीरों का हनन करनेवाला वीरों का नाश करनेवाला। लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? ईश्वर वीरों का नाश करता है ऐसा अर्थ कहीं कैसे हो सकता है? असुर कहा होता तो समझते कि असुरों का राक्षसों का नाश करनेवाला। शकराचार्य ने काफी सोचने पर उसका अर्थ किया है कि वीरहा यानी विविध ईरणाओं का हनन करनेवाला विविध प्रेरणाओं को खतम करनेवाला। जो विविध प्रेरणाओं का खात्मा करके सबको एक में एकत्र करता है वह है वीरहा।

ईश्वर की इच्छा से ही काम

मुझे लगता है कि गाव में ये जो गाव इश्तहार लगे पड़े हैं वे सारे एक क्षण में खतम होने चाहिए। लेकिन यह तब हो सकता है जब ईश्वर मेरे शब्द के साथ अपनी प्रेरणा जोड़ दे। अगर ईश्वर उसकी प्रेरणा मेरे शब्द के साथ जोड़ देता है तो ये सारे इश्तहार एक क्षण में खतम हो सकते हैं। लेकिन वैसा नहीं होगा तो मेरी तीव्र वासना होते हुए भी ये इश्तहार यहीं पर रहेंगे तो मुझे बुरा नहीं लगेगा। मैं मानूगा कि मेरी तीव्र वासना होते हुए भी सबको प्रेरणा नहीं हो रही है तो ईश्वर की इच्छा नहीं है।

आरम्भ में 'अकेला चालो रे'

जब भूदान शुरू हुआ तब आरम्भ में मैं अकेला ही भूदान मांगता

था। एक साल तब भारतभर में एक ही भूदान की सभा होती थी और मैं अकेला जमीन माँगता था। उस समय जमीन मिलती थी और चूँकि वह एक नयी चीज थी, इसलिए सबका ध्यान खिंचता था। उस समय एक भाई ने मुझसे पूछा कि इस प्रकार यह माँगने का कार्यक्रम, काम पूरा होने के लिए कितने समय तक चलता रहेगा ?

मैंने कहा, आप जिस गति को देखकर पूछते हैं उस गति के हिसाब से पाँच सौ साल लगेंगे।

इसपर उसने कहा 'तब यह काम कैसे होगा ?'

उन दिनों चुनाव का प्रचार जोरों से चलता था और जगह जगह सभाएँ होती थी। भूदान की तो मेरी एक ही सभा होती थी। सर्व-सेवा संघ उसके बाद आया। मैंने उनसे पूछा कि आज के दिन देश भर में भूदान की सभाएँ कितनी हुई होंगी ?'

उन्होंने कहा 'शायद एक ही सभा हुई होगी।'

मैंने फिर पूछा, आज देशभर में चुनाव की कितनी सभाएँ हुई होंगी ?'

उन्होंने कहा सैकड़ों हुई होंगी।'

तब मैंने कहा 'जब देशभर में भूदान की हजारों और लाखों सभाएँ होंगी तब यह काम तुरन्त होगा। वैसा नहीं होता है और जैसा आज चल रहा है वैसा चलता रहेगा तो पाँच सौ साल यह काम पूरा होने में लगेंगे।

बारहों का अवतार

बाद में हमने देखा कि इस काम में अनेक लोग आये। हममें से कुछ लोग अलग अलग कामों में लगे थे उनकी विविध प्रेरणाएं खतम हुई। 'बारहों'-भगवान् का अवतार हुआ और वे सब इस काम में एकत्र हो गये। काम एक हद तक हुआ।

त्रिविध प्रेरणाएँ शुरू

उसके बाद भगवान् ने सोचा होगा— सोचा होगा इसलिए कहता हूँ

कि मैंने उनसे दरबार में जाकर पूछा था। (लेकिन मुझे ऐसा लगता है—भगवान् ने भाका होगा)—कि क्या तुम इनके कामों में प्रेरणा भरता रहूँ? तब मैं विविध ईरणाओं का काम करना शुरू हो गया।

आज देश में सरकार को छोड़कर और किसी भी संस्था के पास इतनी शक्ति नहीं है, जितनी सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के पास है। आज समाजन के कार्यकर्ता, भूदान के कार्यकर्ता, ग्राम-सेवा-संघ के कार्यकर्ता, कस्तूरबा-ट्रस्ट के कार्यकर्ता, गांधी निधि के कार्यकर्ता इस प्रकार सर्वोदय के पास जितनी शक्ति है उतनी शक्ति किसी भी संस्था के पास नहीं है। यह सही है कि जब चुनाव का समय आता है तब पार्टियाँ बहुत-सी शक्तियाँ जुटा लेती हैं लेकिन जहाँ तक नित्य काम से सम्बन्ध है सर्वोदय के कार्यकर्ता से बढ़कर किसीकी शक्ति नहीं है।

मानवता को शान्ति-सेना ही बचा सकती है

इन दिनों मुझे लग रहा है कि शान्ति-सेना से बढ़कर और कोई प्रेरणा नहीं हो सकती। अपनी विविध ईरणाएँ छोड़कर सब इस काम में लग जायेंगे ऐसा इस समय मुझे लग रहा है। आज राष्ट्र की ज्यादा-से-ज्यादा जरूरत शान्ति-सेना की है। शान्ति-सेना से भय हट जायगा ऐसा मेरा कहना हरगिज नहीं है। आज छोटे-छोटे दंगे देश में हो रहे हैं। ऐसे मौके पर अगर शान्ति-सेना होती है, तो वह इन बुराइयों को काफी हद तक रोक सकती है। ये बुराइयाँ तब होती हैं जब मानवता गिरती है। जब मानवता गिरती है, तब सामान्य सेना उसको नहीं रोक सकती। ऐसी बुराइयों के समय शान्ति-सेना ही काम आती है।

मुझे लगता है कि शान्ति-सेना होगी तो सबकी विविध प्रेरणाएँ खत्म होंगी और सब उसमें जुड़ जायेंगे। इसलिए मैं भगवान् से प्रार्थना कर रहा हूँ कि भगवन्, तेरी प्रेरणा इसमें भर दे तो सबकी विविध ईरणाएँ खत्म हों और सबके सब इस काम में जुट जायें। मैंने शान्ति सेना के लिए सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम दिया। आज तक एक भी व्यक्ति—

ऐसा नहीं मिला जिसने सर्वोन्य पात्र रखने से इनकार किया हो। हर शख्स उसको ठीक मानता है और कहता है 'यह सर्वान्य-पात्र कायम रह सकेगा क्या? उसका काम व्यवस्थित ढंग से चल सकेगा क्या?' ऐसे सवाल लोग पूछ लेते हैं, लेकिन फिर पर भी सर्वोन्य-पात्र रखने से इन्कार नहीं करते और रखने को तैयार हो जाते हैं।

शांति सेना को सबका समर्थन

सबको लगता है कि शान्ति-सेना की शक्ति बनेगी, तो देश की प्राण-शक्ति पूरक-शक्ति बनेगी। सब पार्टीवाले कहते हैं कि यह काम अच्छा है लेकिन यह हम नहीं कर पायेंगे। जो झगड़े संघर्ष होते हैं, वे पार्टियों के कारण भी होते हैं या पार्टियाँ उनमें कहीं-न-कहीं मिली हुई होती हैं, इसलिए वे कहते हैं कि मौके पर हम कुछ शान्ति-सैनिक का काम भले ही कर लें लेकिन स्वतन्त्र रूप से यह काम हमसे नहीं बन सकेगा। लेकिन यह काम जरूर करना चाहिए।

जिस काम को सबके आशीर्वाद हैं और जिसके जरिये हम देश के सभी घरों में प्रवेश कर सकते हैं वैसा यह काम है। हम अगर शान्ति-सेना के जरिये अंदरूनी "लॉ-एण्ड-आर्डर" के बारे में देश की सरकार को निश्चिन्त बना सकते हैं तो उसमें सरकार की ताकत बढ़ेगी। हम गाँव-गाँव जाकर गाँवों की ताकत बना सकते हैं। इससे सरकार की चिन्ता दूर होगी और देश की ताकत बनेगी।

शांति का काम होगा, तो भूदान आगे बढ़ेगा

जब कभी सरकार के नेताओं से मिलना होता है तो वे अक्सर यह पूछते हैं कि आपकी शान्ति-सेना का काम कहाँ तक आया, कैसा चलता है? यह काम बढ़े ऐसा सरकार के नेता चाहते हैं। फिर भी अगर सब लोग इसको पूरा उठा लेते हैं तो मैं मानूँगा कि अभी इसमें ईश्वर की प्रेरणा नहीं है। लेकिन मैं यह बात कहता रहूँगा। मुझे लगता है कि इसके बिना आपके भूदान-ग्रामदान आदि काम नहीं चलेंगे। आप गाँव में चले गये जमीन माँगी, लोगों ने जमीन दी, लेकिन आप अगर उनसे कहेंगे कि भूदान

नाश्ते बाकी जीवन के साथ प्रत्ना के वार में हम कुछ नया कर सकते हैं। आगर ये भूदान-ग्रामदान काम नहीं करेंगे। गाँवा में ग्रामदान की प्रमाण में पत्थर उनको रोशन का काम किया जायेंगे तभी भूदान ग्रामदान आरम्भ बढ़ेगा।

ऐसा शब्द मिले, कि सारी शक्तियाँ एकत्र हों

मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि हम लोग को एक ऐसा शब्द दे कि जिससे सारी शक्तियाँ एकत्र होकर एक साथ काम में लग जाय। मैं यह दृष्टान्त देता हूँ। एक बड़ा पत्थर पड़ा है। सब मिलकर अगर एक ही साथ आकर जोर लगाते हैं तो वह जगह से हटता है काम हो जाता है। लेकिन अगर मैं आकर दस बजे जोर लगाता हूँ, आप सात बजे जोर लगाते हैं और वे चार बजे जोर लगाते हैं तो उसमें व्यायाम भले ही हो जाय, पत्थर नहीं हटेगा। आप कितना कुरसत से आयेंगे, तो पाव-पुष्ट कारका राह नहीं देखेगा। सबको एक साथ जोर लगाकर काम कर लेना चाहिए। बाद में विविध प्रेरणाएँ भले चलें। जब हमारे शरीर की स्थिति है कि काम किया तो शरीर में कुछ थकावट आती है। फिर निद्रा, आराम किया और फिर स्फूर्ति आ गयी तो काम में लगे। काम पूरा कर दिया फिर आराम किया।

इस शरीरशास्त्र की तरह ही समाजशास्त्र में भी चलता है। थोड़े दिन जरा जोर से काम चला तो बाद में स्लैक सीजन आता है। आन्दोलन की जगह प्रमाद प्रमाद विचार आदि की जरूरत होती है। इतने दिन स्लैक सीजन गया तो भले गया। अब फिर से एक साथ जोर लगे और सब विविध प्रेरणाएँ खत्म हों और काम जोर से चले। उसके बाद फिर आराम आयेगा और उसके बाद फिर नयी प्रेरणा आयेगी। इसलिए मित्रों एक बार जोर से काम में लग जाना चाहिए।

इन्दौर प्रार्थना प्रवचन
१७-८-६०

: १९ :

विकार, विचार और चिंता से मुक्ति

साहित्यिकों की कठिनाई

बचपन से मेरा साहित्य के साथ सतत सम्बन्ध रहा है। हिन्दुस्तान की अनेक भाषाओं के साहित्य से मेरा कुछ परिचय रहा है और बाहर की भाषाओं का भी थोड़ा-सा परिचय रहा है। प्राचीन साहित्य का काफी परिचय रहा है। इन दिनों भी मैं मासिक पत्रिकाएं देखता रहता हूँ जिसमें कुछ झलक मिल जाती है। अखबारों में कभी-कभी नयी किताबों की समीक्षा रहती है। उसे भी देखता रहता हूँ। लेकिन इस वक्त हिन्दुस्तान में जो साहित्य निकलता है उससे मुझे संतोष नहीं है।

आधुनिक गद्य-साहित्य का धीरे धीरे विकास हो रहा है लेकिन साहित्य से जो अपेक्षा होती है और जो करना चाहिए, वह पूरा नहीं हो रहा है। उसका एक कारण तो यह है कि बहुतों को जीवन-कलह (स्ट्रगिल फार एग्जिस्टेन्स) में टिकने की काफी कोशिश करनी पड़ती है साहित्यिकों को भी करनी पड़ती है। उसमें बहुत-से हार जाते हैं। कई लोग लाचारी से कुछ ऐसे काम ढूंढ लेते हैं और करते रहते हैं जो काम स्वाभाविकतः साहित्य की प्रतिभा के लिए अनुकूल नहीं होते। वैसे प्रतिकूल परिस्थिति में पड़कर भी कुछ बची हुई साहित्य की प्रतिभा का उपयोग वे कर लेते हैं। लेकिन आज की परिस्थिति एक बहुत बड़ा कारण है। जिस किसी को राज्याश्रय, सरकार का आश्रय या धनिकों का आश्रय मिलता है वह उनसे स्वाधीन हो जाता है और दूसरे लोग वैसा आश्रय ढूंढते रहते हैं।

छोटे मसलों में चित्त गिरफ्तार

दूसरी बात यह है कि जमाना किधर जा रहा है किधर जाना जमाने

के लिए उचित है, तात्विक है, इसका कोई खास भान साहित्यिकों को होना हो सो नहीं लगता है। वे तो उससे उल्टी दिशा में ही जा रहे हैं। जगह-जगह अपने आसपास जो छोटी मोटी समस्याएं हैं और छोटे-मोटे सुख दुःख दायक प्रश्न हैं उनमें साहित्यिक उलझ जाते हैं और उनके कारण उस पार का दर्शन परदर्शन उन्हें नहीं होता है। उनमें करुणा भी होती है, लेकिन उसकी गहराई बहुत कम होती है। कुछ साहित्यिक मजदूरों का वर्णन करके उतने में ही अपनी करुणा समाप्त कर लेते हैं। इन दिनों मानवादी बन रहे हैं, दरिद्रों के कुटुम्ब का विस्तार हो तो उन्हें तकलीफ होती है इसलिए कुछ व्यक्तियों की करुणा कुटुम्ब नियोजन के काम में ही समाप्त होती है। ये तो मैंने कुछ मिसालें दी हैं। ऐसे छोटे छोटे कामों में अपनी कारुण्य वृत्ति की सहानुभूति का जो कवि-हृदय के लिए बहुत आवश्यक होती है वे समाधान दे लेते हैं और विश्व में जो भगवत् प्रवृत्ति चल रही है उसका प्रकाश उन्हें उपलब्ध नहीं होता और छोटे-छोटे मसलों में उनका चित्त गिरफ्तार हो जाता है।

कुदरत का स्पर्श नहीं

तीसरी बात मैं यह देख रहा हूँ कि कुदरत का जो स्पर्श चाहिए—कुदरत के दर्शन का और कुदरती जीवन का—वह साहित्यिकों को नहीं होता है। उन्हें दोनों से अलग रहना पड़ता है, इसलिए स्फूर्ति का एक बहुत बड़ा स्रोत कुण्ठित हो जाता है।

शाश्वत मूल्यों से वंचित

चौथी बात मैं यह देख रहा हूँ कि नये मूल्यों की खोज में सच्चे मूल्य न नये होते हैं और न पुराने होते हैं, इसका भान साहित्यिकों का नहीं रहा है। इसलिए वे बहे जाते और नये मूल्यों के नाम से शाश्वत मूल्यों से वंचित रह जाते हैं।

दोहरा सम्पर्क हो

पाँचवीं बात यह है कि हृदय प्राण-पुरुष से जुड़ा होना चाहिए। जो महत्व वर्षों के अनुभवों से समृद्ध हैं उनसे हृदय जुड़ा हुआ हो और बुद्धि

आधुनिक प्रवाह से जुड़ा हुआ हो, यह आवश्यक है। इस तरह का दोहरा सम्पर्क अर्थात् बुद्धि के जरिये आधुनिक प्रवाह से सम्पर्क और हृदय के जरिये पुराने प्रवाह से सम्पर्क साधना मुश्किल हो जाता है। इसलिए व्यक्ति या तो पुराना सम्पर्क करता है या आधुनिक। बुद्धि अद्यतन और हृदय प्राचीनतम से सम्पृक्त हो, यह तो एक योग ही है। वह योग आज के साहित्यिकों को नहीं सध रहा है।

साहित्यिक मुक्तात्मा हो

एक बात जरूरी है कि साहित्यिक को मुक्तात्मा होना चाहिए, यानी उसके मन और बुद्धि दोनों का समाधान होना चाहिए। इस तरफ आजकल ध्यान नहीं दिया जाता है। और असमाधान में से साहित्य का निर्माण होगा यह खयाल ज्यादा बन रहा है जो उत्तम साहित्य के निर्माण में बाधक साबित हो रहा है।

साहित्यिक बनो

आप आश्चर्य में पड़े होंगे कि ये चीजें कितनी ही सही हों लेकिन हम लोगों के सामने रखने से क्या लाभ है? इसका उत्तर सुनकर आपको और भी आश्चर्य होगा। उत्तर यह कि मैं आपमें से साहित्यिकों के निर्माण की अपेक्षा करता हूँ। जो काम आपने उठा लिया है उसमें लोक-हृदय के साथ सतत सम्पर्क होता है। आप सतत घूमते रहते हैं इसलिए कुदरत के साथ सम्पर्क रहता है। आपने जो काम उठाया है वह युग प्रवर्तित होने के नाते युग प्रवाह के साथ आपका सम्पर्क हो जाता है और एक तटस्थ सेवक के नाते आपका विश्व दर्शन होता है। ये सब चीजें आपको उपलब्ध हैं इस हालत में आपमें से ही सर्वोत्तम साहित्यिक निकलने चाहिए। यह अपेक्षा मैं रखता हूँ। इसके लिए एक आत्म विश्वास होना चाहिए कि यह चीज हमको सधेगी। इसके अलावा यह चीज साधना अपना कर्तव्य है उसके बिना हमारा काम लूला-लंगड़ा पड़ेगा यह बात आपके ध्यान में आनी चाहिए।

काव्य के लिए मुक्त मन की आवश्यकता

हम जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ-वहाँ अनेकविध प्रसंग बनते हैं जिनसे हमें कुछ सीखने को मिलता है। लेकिन कवि इस प्रकार भागता है और स्वच्छंद ही करता है। ऐसी प्रेरणा अगर न हो तो मनुष्य भावना है। तो उसकी साधना शिथिल हो जाती है। अनेक विभिन्न प्रसंग आँखों के सामने हो जाते हैं। कवि की एक दृष्टि होती है। उसमें संवेदना की पहचान होती है। एक छोटा-सा प्रसंग मिल गया तो उसकी बुद्धि में महान् आविष्कार होता है। इस प्रकार के आविष्कार के लिए चित्त-मुक्ति की आवश्यकता है। लेकिन यह चित्त-मुक्ति इतनी सहज और सुलभ होनी चाहिए कि दिमाग बिल्कुल मुक्त रहे। कहीं से भी कुछ विचार या संकेत मिलता है तो उसे ग्रहण करने के लिए दिमाग मुक्त खुला रहना चाहिए। इस अर्थ में हमने पद्य मुक्त होने की जरूरत मानी है। अगर हमारा मन मुक्त रहा तो स्वाभाविकतया महाकाव्यों की स्फूर्ति हो सकती है। खण्डकाव्य कथा आदि के लेखन की भी स्फूर्ति हो सकती है क्योंकि वह सारा निजानुभव का उद्गार ही होगा, सहज प्रकाशन ही होगा। इसलिए वह हृद्य होगा। मैं मानता हूँ कि वह हृद्य होना चाहिए।

'वी आर सेवन' की स्फूर्ति

वर्ड्सवर्थ घूमने निकला। उस समय एक लड़की से मिलना हुआ। उसने लड़की से पूछा कि तुम कितने भाई-बहन हो? उसने जवाब दिया कि हम सात हैं। उनमें से एक समुन्दर के नीचे सोया है, दूसरे का स्मशान नजदीक हुआ है। हम सब वहाँ जाकर बैठते हैं, उसे याद भी करते हैं। इस पर कवि कहता है कि बहन! तुम तो सात नहीं रहे, पाँच हो रह गये, क्योंकि दो मर गये। लेकिन लड़की कहती है, जी नहीं, हम सात हैं। वह इस बात को कबूल नहीं करती कि हम पाँच हैं। वह कहना चाहती है कि हम इन पाँच इस व्यक्त सृष्टि में हैं और दो अव्यक्त सृष्टि में हैं, लेकिन सात हैं। उन पर मृत्यु का आरोप करना गलत

है। इस प्रसंग में से वह सबके स्फूर्ति या जिलयानी पाता है और एक अमर कविता लिख डालता है 'वी आर सेवन'।

कार्य में से स्फूर्ति के नव पल्लव

हम लोग श्रद्धा काम करते हैं लेकिन उस काम के साथ सरस्वती की सेवा भी होना चाहिए। ऋग्वेद में ऋषि सरस्वती की प्रशंसा कर रहा है कि 'हे सर्वोत्तम माता तू सर्वोत्तम नदी-माँ है। जिन नदियों का प्रवाह प्रकट है वे गंगा-यमुना जैसी नदियाँ उत्तम हैं परन्तु तेरा गुप्त प्रवाह है, इसलिए तू सर्वोत्तम है। सब देवताओं में श्रेष्ठ प्रकाश देनेवाला है। हम सब अप्रशस्त हैं। निर्गोचेष्ट निर्लिप्त गर्वान्त हैं। हे माता, तू हमारी प्रशस्ति कर—इस तरह सरस्वती हमारा प्रशस्ति करेगी। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। दुनिया आराम सहज ही अप ना करेगी कि आप ऐसे काम में मग्न है कि जिसमें स्फूर्ति के नित्य नव-पल्लव पल्लवित होने चाहिए।

आप पश्याता के लिए निश्चन्त हैं तो शाम में एकाध घण्टा किसी शान्त एकान्त स्थान में बैठकर बिताना चाहिए। हम भी इसी तरह बिताते हैं। हमें उतावली क्या है? अपने जीवन में आराम हो है। इसलिए शाम में एक घण्टा बैठकर चिन्तन मनन करना चाहिए। संगीत भजन आदि चलना चाहिए। तीन घण्टे का कामना हो तो चार घण्टे का मानना चाहिए।

निद्रा में विचारों का विकास

बाबा रात सात को सना आठ बजे सोता है और दिन में भी बीच-बीच में दो-तीन दस पन्द्रह-पन्द्रह मिनट सोता है। आप लोग भी निद्रा में कंजूसी न करें। भरपूर निद्रा लेना चाहिए। सिर्फ इसी बात की रखनी चाहिए कि निद्रा गाढ़ हो। आलस और तन्द्रा में मत पड़ो। निद्रा उपासना में आये तो जागृति के समय स्फूर्ति रहेगी। नहीं तो बहुत-से आत्मा घटा तक श्रवण करते हैं लेकिन अस्फूर्ति की अवस्था में श्रवण करते हैं तो वह असर नहीं होता, जो होना चाहिए। बुद्धि में आलस हो

और उस अवस्था में हम मुक्त रहें यह बन नहीं सकता। उस अवस्था में हम शांत रहते हैं क्योंकि उसमें हमें बहुत कम काम करना पड़ता है। बहुत सारा काम चरखा ही कर लेता है। इसमें बुद्धि पर भार नहीं आता है। आप सबको चाहिए कि रात को दस से लेकर सवेरे पाँच तक निद्रा लें। उसीसे प्रतिभा खिलेगी। निद्रा का प्रतिभा के साथ बहुत सम्बन्ध है। जो लोग सताप-दोष में निरत हैं उनकी निद्रा समाधि स्थिति है ऐसा माना गया है। योगियों को बहुत प्रयत्न से जो समाधि हासिल होती है, वह समाधि कर्मयोगी को अप्रयत्नेन लीलायैव प्राप्त होती है। समाधि ऐसी निद्रा समाधि ही है। वेद समाधि में भी ध्यान तो होता ही है। धान को मिट्टी के अन्दर गाँदने हैं तो अन्दर ही उसका विकास होता है और फिर वह अंकुरित होकर फूट निकलता है। उसी तरह सोते समय हम सर्वोत्तम विचार करें तो भूमि में उन विचारों का बीज बोया जायगा और उस पर निद्रा की मिट्टी डाली जायगी तो उनका अत्युत्तम विकास होगा। अगर निद्रा न होगी तो उस तरह का विकास नहीं हो सकता।

निद्रा समाधिस्थिति

निद्रा में हम परमात्मा के बिलकुल करीब पहुँच जाते हैं और फिर वहाँ से शक्ति लेकर लौटते हैं। वेदों में कहा है कि जैसे पक्षी शाम को अपने घोंसले की तरफ जाते हैं वैसे ही मेरी सारी भावनाएँ उस परमात्मा के पास पहुँचने के लिए उस वसति-स्थान की तरफ जा रही हैं। पक्षी दिन भर के काम से थक जाते हैं तो आखिर उस एक विश्राम-स्थान की तरफ जाते हैं। वैसे ही सारे जीव थके माँदे होते हैं दिनभर चिन्तन और श्रम से थक जाते हैं लेकिन निद्रा में भी अगर उन्हें स्वप्न आयें तो वह एक तरह की सजा ही है। निष्काम-कर्मयोग निरत मनुष्य की निद्रा समाधि के जैसी होती है। उसमें स्वप्न नहीं आते हैं वह स्फूर्ति-स्थान बनता है इसलिए आपके जीवन में रात में निद्रा का निश्चित स्थान रहना चाहिए।

निद्रा के प्रयोग

मैंने निद्रा के कई प्रयोग किये हैं। दो घण्टे से लेकर

निद्रा लेने के प्रयोग किये हैं। कुछ दिनों तक मैं बारह बजे सोता था और दो बजे उठता था, बाकी बाईस घंटे काम करता था। इस तरह के प्रयोगों के लिए मुझे प्रेरणा थी और मौका भी मिलता था। दो घंटे की निद्रा में जो अनुभव आये वे भी मेरे पास पड़े हैं और जब मेरा शरीर कमजोर था, तब पुष्टि के लिए मैंने बारह घंटा निद्रा लेने का प्रयोग भी किये हैं। रात में आठ घंटा और दिन में तीन चार दफा एक एक घंटा निद्रा ली है और उसके भी परिणाम आजमाये हैं। कुल मिलाकर मेरी यह राय है कि पचास से लेकर साठ साल तक के मनुष्य को कम-से-कम सात घंटे और हो सके तो आठ घंटे निद्रा मिलनी चाहिए। उससे आधा घंटा ज्यादा चलेगा, लेकिन कम नहीं। इतनी निद्रा ली जाय तो स्फूर्ति रहेगी।

काल की सार्थकता

इस तरह कोई नहीं मानता। सब यही कहते हैं कि नींद से आयु क्षीण हो रही है। कवि कहता है कि नींद में अपनी आयु खतम क्या करते हो? लेकिन नींद में आयु खतम हुई तो जागृति में भी खतम हुई, यह समझना चाहिए। काल सार्थक कब होता है इसका एक विचार मैंने अपने लिए बनाया है। जिस क्षण मन में विकार आते हैं, वह क्षण व्यर्थ गया, ऐसा मानना चाहिए। जिस क्षण विकार नहीं है वह क्षण चाहे ताश में या शतरंज के खेल में खोये, तो भी वह समय आपने कमाया, खोया नहीं। कौनसा समय सार्थक हुआ और कौनसा निरर्थक गया इसकी यह कसौटी है। निद्रा में स्वप्न आये तो वह समय व्यर्थ गया ऐसा मानना चाहिए। गाढ़ निद्रा आयी तो समय सार्थक हुआ ऐसा मानना चाहिए। क्योंकि गाढ़ निद्रा का जागृति में उपयोग होता है।

नींद में जागृति और जागृति में नींद!

इन दिनों यह जो भ्रम फैला है कि कम-से-कम नींद लेनी चाहिए, वह गलत है। नींद तो पूरी ही लेनी चाहिए। नींद में जो जागृति आती है उसका नाम स्वप्न है। और जागृति में नींद आने का नाम है विकार।

जागृति में नाना प्रकार के विकार पैदा होते हैं, तो उनकी मूर्च्छा है ऐसा समझना चाहिए। यह भ्रम जैनों का है। हम चाहते हैं कि जागृति में विकार न हों। उसीसे नि स्वप्न निद्रा आयेगी। यह बहुत जरूरी है कि रात में सोने के दिन के अन्त में हम नाम-स्मरण करें और पूरी नींद लें। अच्छे साहित्यिक बनने के लिए मैंने आज आपको एक नुस्खा बता दिया।

ऐसा लिखो, जिसमें दर्शन हो

अक्सर डायरी लिखने की बात कही जाती है। बापू भी बार-बार कहते थे। लेकिन वह बात मुझे कभी जंची नहीं। तुम लोग डायरी मत लिखा करो। उसका कोई उपयोग नहीं है। भावना लिखने का मतलब है, भूतकाल में जाना। इस प्रकार भूतकाल का टाला। बापू कुछ दूसरी बात कहते थे। वे जो कहते थे वह खुद भी करते थे। खुद अपने लिए जरूरत न हो, तो भी करते थे। दो मिनट उनके मैं देर हुई, यह बहुत बुरी लगता है। यह भी कोई डायरी में लिखने की बात है ? कुछ लोग डायरी में अपने दोष लिखा करते हैं वह गलत और कुछ लोग दूसरों के दोष लिखा करते हैं, वह भी गलत। मैं कभी बारीक-बारीक बातें लिखना पसन्द नहीं करता। मैं भूतकाल में जाना नहीं चाहता। जब हमारी लड़कियाँ हमसे कहती हैं कि पुराना कोई भाषण दीजिए, तो मैं कहता हूँ कि मैं भूतकाल में नहीं जाऊँगा। मैंने देखा ही नहीं तो मैं मुक्त हो जाऊँगा। दिमाग को ताजा बनाए रखने के लिए बहुत जरूरी है कि व्यर्थ में ज्यादा न लिखे जायँ। ऐसी बातें लिखी जायँ जिनमें दर्शन हो, चिन्तन हो जिसका साथ हो। इस तरह लिखने रहने से साहित्यिक का निर्माण होगा।

जीवन में योग की साधना

जवानी में योग की बहुत जरूरत है। हम लोगों के जीवन में त्याग ज्यादा नाना है। मैं योग-परायण लोगों को नहीं हमारे कार्यकर्ताओं की बात कर रहा हूँ। हमारे जीवन में अनेक प्रकार के क्लेश कष्ट रहते हैं। हमें अनेक प्रकार के काम करने पड़ते हैं, विपरीत परिस्थिति में रहना पड़ता है इसलिए जीवन में त्याग अधिक है। वह ठीक ही है। लेकिन

त्याग का अनुभव करना है, तो उसमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। मैंने जीवन का सूत्र बनाया है त्याग दो मात्रा और भोग एक मात्रा। हममें से कुछ का जीवन भोग के अनुकूल होगा तो कुछ का जीवन त्याग के। यह सब परिस्थितिवश होता है। लेकिन त्याग और भोग दोनों स्थिति में हमें योग साधना चाहिए। 'समत्व योग'। चित्त का समत्व बना रहा तो जीवन सुख जायगा। हमारा एक लड़का बहुत चमत्कार है। कश्मीर में पार-पजाब लाँघते समय उसने बड़ा ही पुरुषार्थ किया उसका सहन अच्छा बनी, लेकिन बाद में उसने बहुत ज्यादा काम किया तो योग चला गया। इस तरह जीवन में योग का लोप होता है या यह चिंता की बात है। कुछ चीजें करने की होती हैं और कुछ बोलने की। प्रयास चालने की चीज है और योग करने की बात। प्रयास एक आकांक्षा है। हम जितना आगे बढ़ेंगे, आकांक्षा उतनी और आगे बढ़ती जायगी। उसके और हमारे बीच फासला रह ही जायगा। हम जितना आगे बढ़ेंगे, प्रयास का एक एक नया रूप सामने आयेगा और हमें मालूम होगा कि हम यह नहीं सधा। इसलिए समझना चाहिए कि प्रयास आकांक्षारूप है। हमें अपने जीवन में योग साधना चाहिए। उससे उत्साह, स्फूर्ति बनी रहेगी। और फिर जितनी सहजता से लोग अपने घर में भी नहीं रह पाते हैं उतनी सहजता से हमारी आराम-यात्रा बनेगी।

सौ साल जीना ही है

यात्रा में खाने को जो मिला सो खाते हैं यह ठीक है। क्या खाया, यह महत्त्व की बात नहीं है लेकिन कितना खाया यह महत्त्व की बात है। इसलिए नाप-तौलकर खाना चाहिए। व्यसन की चीज का सेवन नहीं करना चाहिए। मसाले वगैरह भी ज्यादा नहीं खाने चाहिए। बस हमारा आहार सात्त्विक हो रहता है। लेकिन उसमें भी मात्रा सधनी चाहिए। कोई फल खाता है लेकिन ज्यादा खाता। और दूसरा कोई दाल रोटी खाता है, लेकिन परिमित खाता है तो कहना चाहिए कि दूसरा योगी है। यद्यपि

पदार्थ सात्त्विक है तो भी ज्यादा मात्रा में खाने से खानेवाला योगी नहीं बनता। वे यह बताते नहीं भूलते थे कि हमारा शान्ति-मन्दिर हमारा पेट। शान्ति-मन्दिर और भोजनालय दोनों में विराम होना चाहिए। आहार थाली में रख ताजगी रखना चाहिए। आहार ऐसा रहे जिससे बुद्धि और हृदय में भी ताजगी रहे। इसके लिए भोजन की मात्रा का परिमाण कम करना पड़े तो भी परवाह नहीं, क्योंकि भगवान् हमें अन्न खाने देनेवाला है। हम अन्न खानेवाले नहीं हैं। हम तो मात्र पाते ही हैं। उसका त्याग भी आ सकता है। ईशावास्य में कहा है "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः"। इसलिए उत्साह नहीं खोना चाहिए। धर्म की मात्रा चाहे कम करनी पड़े तो भी हर्ज नहीं, लेकिन भोग की मात्रा कम करनी चाहिए।

धार्मिक और शान्तिमय बनें, यहीं से मैंने आरम्भ किया और भोजन भाग में प्रवेश कराया। जिस भाग के पीछे सात्त्विक में भोजन प्रवेश नहीं होगा। यह एक खास बात मुझे मालूम पड़ती थी।

अपनी बात

अपने लिए मैं एक बात कहना चाहता हूँ। सन् १९१६ में मैंने घर छोड़ा, तब इक्कीस साल की उम्र थी। मैंने माना था कि इक्कीस साल और मिल जायें तो काम खतम होगा। बड़ी जिज्ञासा लेकर मैं घर छोड़कर निकला था। उसके लिए मुझे इक्कीस साल चाहिए थे। पहले इक्कीस साल घर में बीते थे। उतने ही और चाहिए। सन् १९५७ की समाप्ति के दिन थे और इक्कीस साल पूरे हो रहे थे। उस समय मेरा शरीर अत्यन्त कमजोर था। वजन ८८ पौंड था। मैंने माना ही था कि अब ज्यादा वजन की जरूरत नहीं है, क्योंकि इक्कीस साल पूरे हो चुके हैं। अब समाप्ति है और समाधान भी मुझे मिल चुका। समाधान तो मानने पर निर्भर करता है। मुझे तो बचपन में भी इतना ही समाधान था। बचपन से आज तक मुझे कभी पता ही नहीं कि लोगों का समाधान हासिल करने में

तकलीफ मालूम होती है। तब वह तो असमाधान के लिए होगा। बचपन में मैं समाधि की कोशिश करता था, यद्यपि मैं मानता था कि समाधि कठिन है। गरमी के दिनों में नल के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ जाता था, ऊपर से धीमी-सी धारा गिरती थी जैसे महादेव के सिर पर का अभिषेक पात्र हो। मेरा चित्त शान्त हो जाता था और मैं मानता था कि समाधि लग गया। वास्तव में समाधि लगी या नहीं यह तो भगवान् ही जाने लेकिन मैं उस समय मान लेता था कि मेरी समाधि लग गया।

सन् १९४८ के प्रारम्भ में मैंने मान लिया था कि मेरा समाधान हो चुका है तो अब समाप्ति होगी। बापू के पास शिकायत पहुँच गयी कि मेरा शरीर कमजोर है। वैसे उनके और मेरे बीच चार मील का ही फासला था। लेकिन मैं अपने काम में इतना तन्मय रहता था कि कभी उनके पास नहीं जाता था और मैंने यह भी माना था कि उनके समय की बहुत कीमत है। जब बापू को पता चला तब उन्होंने मुझे बुलाया। कहा कि तुम्हारा शरीर कमजोर है तो मेरे पास रहो, मैं उपचार करूँगा। मैंने उनसे कहा कि आपके उपचार पर मेरा पूर्ण विश्वास नहीं है। आपके पास पचासों काम हैं। उनमें से एक काम है बीमारों की सेवा और उनमें भी पचासों बीमार आपके पास हैं जिनमें से एक मैं हूँ। मेरे हिस्से कितना आयेगा? इस पर बापू बोले कि बात तो ठीक है फिर तुम डाक्टर के पास जाओ। मैंने जवाब दिया कि डॉक्टर के पास जाने के बदले यमराज के पास जाना ठीक है। फिर बापू बोले कि हवाफेरी के लिए कहीं जाओ। फिर वे एक-एक स्थान बताते गये—मसूरी, उटकमंड, बंगलोर आदि। आखिर मैंने हवाफेरी की बात कबूल की और कहा कि मैं स्थान बदलने के लिए तैयार हूँ। सुनते ही वे खुश हुए और उन्होंने पूछा कि कहाँ जाओगे? मैंने कहा कि वर्धा से चार मील की दूरी पर पवनार है, जहाँ जमनालालजी ने एक बंगला बनाया है वह मुफ्त में हासिल होगा। हवाफेरी के लिए मैं वहाँ जाऊँगा। इस पर बापू बोले कि यह भी ठीक है कि गरीब लोग कहाँ दूर जा सकते हैं? लेकिन बात ठीक तो है बताई कि

आज तू जो चिन्तन करता है वह सब छोड़ दे। पवनार चार ही मील का दूरी पर है तो मन आगे चर्चा करने आयेंगे। मैंने कहा कि ठीक है मैं आज चिन्तन छोड़ दूंगा।

उस समय चार मील चलने की ताकत मुझमें नहीं थी। इसलिए मैं मोटर में बैठकर पवनार गया। जब मोटर धाम नदी के पुल पर पहुँचा तो 'अपरस्त मया संयम्न मया'—मैंने छोड़ा मैंने छोड़ा, ऐसा मन्त्र मन में विचार बोलकर मैं पवनार के उस टीले पर बैठ गया। सिर्फ ज्ञानदेव की एक किताब अपने पास रखी जिसके चयन का काम उस समय मैं करता था। उसमें सिर्फ आधा घंटा देता था और बाकी दिनभर घूमना और लेटना। शरीर कमजोर था इसलिए आरम्भ में मैं पाव मिनट घूमता था। धीरे धीरे उसे बढ़ाया। आहार तो मेरा हमेशा सात्विक ही रहता था और पौष्टिक भी रहता था। लेकिन उस समय मैंने दूध की मात्रा बढ़ायी और बाकी चित्त में कोई विचार ही नहीं रहा। विचार तो पहले से ही नहीं था। इस तरह शून्य स्थिति में मैं घूमता था। सामने पहाड़, आदमी आते रहे हैं लेकिन चित्त को कोई अनुभव नहीं हो रहा है, चित्त पर उनका कोई असर नहीं हो रहा है। कोई चिन्तन भी नहीं चल रहा है ऐसी हालत थी। परिणाम यह हुआ कि एक मास में चालीस पौंड वजन बढ़ा और दर्द भी चला गया। मेरा यह अनुभव है कि जब हम विचार और चिन्ताओं पर काबू पाते हैं और चिन्ता से अलग होकर केवल आत्मनिष्ठ रहते हैं तो शरीर बहुत जल्दी स्वस्थ हो जाता है।

गुजरात से मैं ९८ पौंड वजन लेकर निकला। और जब ... में लौटा तो ९६ पौंड था। फिर ... है। इसमें ज्यादा ... ज्यादा तकलीफ लोगों को हुई मुझे ... है। अगर मैं ... व्यक्ति होता तो मुझे ज्यादा तकलीफ ... होती है ... व्यवस्था का काम स्थानीय लोग ... करते हैं। ... यात्रा में बड़े लोगों से मिलने का ... है। ...

बहुत तकलीफ उठाकर मिलने आते थे। अज्ञात यात्रा में मैंने फिर से एक प्रयोग शुरू किया। पवनार में बाहरी काम कुछ नहीं था। थोड़ा-सा ज्ञानदेव का चिन्तन और फिर खोदना, घूमना, बैठना, खाना और सोना—और कुछ भी नहीं था। कोई मिलने आया तो मैं बात कर लेता था। उसकी बात सुनता था। यान्त्रिक तौर पर उत्तर देता था और वह सही भी होता था लेकिन चिन्तनपूर्वक उत्तर नहीं देता था। इधर इस अज्ञात यात्रा में मैंने नया प्रयोग शुरू किया। भूदान आदि की सारी चिन्ता छोड़ दी। विकार और विचार की मुक्ति के साथ चिन्ता-मुक्ति भी आरम्भ हुई। *मुझे कोई कर्तव्य नहीं है ऐसा मान लिया। सब चिन्ताएं छोड़ दीं, तो परिणाम* यह हुआ कि मैं खाता चला गया और शरीर बढ़ता चला गया। अक्सर यह माना जाता है कि बुढ़ापे में शरीर बढ़ने में देर लगती है। लेकिन मुझे कुछ भी देर नहीं लगी। इस समय गरमी की बहुत ज्यादा तकलीफ हुई, धूल की तकलीफ तो थी ही, फिर भी शरीर आराम ही महसूस कर रहा था और मेरी सारी कमजोरी हट गयी। जो काम बहुत-सी औषधियों से नहीं बनता वह विकार, विचार और चिन्ता की मुक्ति से बनता है, यह मेरा अपना अनुभव है। इसका थोड़ा-सा अभ्यास आप भी करें।

इन्दौर
२३-८-'६० —गुजरात के कार्यकर्ताओं के बीच